वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 346
ISBN 978-93-82071-16 -7

वर्षायोग स्थापना

–प्रस्तुति –

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में
पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित
''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत आषाढ़ शु. चतुर्दशी,
2 जुलाई 2012 के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

प्रथम संस्करण	वीर नि.सं. 2538	मूल्य
1100 प्रतियाँ	आषाढ़ शु. चतुर्दशी, 2 जुलाई 2012	32/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–
प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशक एवं सम्पादक :–
स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–
जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा प्रस्तुत की जा रही ''वर्षायोग स्थापना'' नाम की यह पुस्तक अनादि जैन शासन के लिए एक दस्तावेज है। अनादिकाल से इस धरती पर दिगम्बर जैन मुनियों का विचरण होता रहा है और उनकी निर्बाध चर्या के पालन में सम्पूर्ण समाज सदैव सहयोगी रहा है। इस पंचमकाल के मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका आदि चतुर्विध संघ के साधुगण किस प्रकार से वर्षायोग की स्थापना करते हैं ? वर्षायोग कब से शुरू होता है और कब समाप्त होता है ? तथा वर्षायोग की स्थापना क्यों की जाती है ? इसका रहस्य क्या है ? इन सब बातों का इस पुस्तक के अन्दर आगम प्रमाण सहित वर्णन किया गया है।

अनगार धर्मामृत, मूलाचार, आचारसार, मूलाचारप्रदीप, भगवतीआराधना आदि ग्रंथों के आधार से इसमें वर्षायोग स्थापना से पूर्व दिन करने वाली मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना एवं भक्त प्रत्याख्यान आदि क्रियाएं भी हैं, जो साधु संघों के लिए पूरी तरह से उपयोगी हैं। एक विशेष बात यह है कि वर्षायोग स्थापना के सम्पूर्ण भक्तिपाठ का हिन्दी पद्यानुवाद भी इसमें दिया गया है, जिसको पढ़कर प्रत्येक क्रिया का अर्थ समझा जा सकता है।

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का जीवन दृढ़ सम्यग्दर्शन सेयुक्त है। उनका मानना है कि पंचमकाल में शरीर-संहनन कमजोर होने के कारण अधिक तपस्याकरना कठिन तो है ही तथा प्रमाद आदि के वश से व्रतों में जो दोष लग जाते हैं, उनके क्षालन हेतु साधु-साध्वियों को अपनी नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं में सदैव सजग रहना चाहिए। दूसरी बात यह है कि अनादिकाल से जिनशासन के अनुसार ढाई द्वीप की 170 कर्मभूमियों में विराजित स्थविरकल्पीमुनिगण आदि आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की पूर्व रात्रि में ही वर्षायोग की स्थापना करते आये हैं। 60वर्ष के अपने दीक्षित जीवन में पूज्य माताजी ने प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज को, आचार्य श्री वीरसागर महाराज को, आचार्य श्री शिवसागर महाराज को, आचार्य श्री धर्मसागर महाराज आदि सभी महान आचार्य संघों को इसी निश्चित तिथि पर वर्षायोग स्थापना करते देखा है औरस्वयं हमेशा उसी दिन स्थापना किया है, जबकि वर्तमान में उक्त तिथि को ज्यादा महत्व न देकर आगे कीतिथियों में (विशेषरूप से रविवार को) मंगलकलश स्थापना के नाम से वर्षायोग स्थापित करने के समाचार ज्ञात होते हैं। जो भी हो, साधु-संतों को ही पंचमकाल के अंत तक मोक्षमार्ग कीअक्षुण्ण परम्परा का निर्वाह करना है, इसी दृष्टि से आगम की विशेष क्रियाओं का समय-समय पर प्रचार-प्रसारउपयोगी प्रतीत होता है। छोटी लघुकाय पुस्तक होने से इसका अधिक लाभ भी सभी को प्राप्तहो सकेगा। अपने 60वें वर्षायोग स्थापना के अवसर पर पूज्य माताजी के द्वारा प्रदत्त यह कृति समस्त संतों के वर्षायोग स्थापना में सहायक बने, यही इसके प्रकाशन की सार्थकता है।

पूज्य माताजी चिरायु हों एवं स्वस्थ रहकर हम सभी को इस प्रकार के आगमिक विषयों से परिचित कराती रहें, यही उनके श्रीचरणों में शतशः वंदामिपूर्वक निवेदन है।

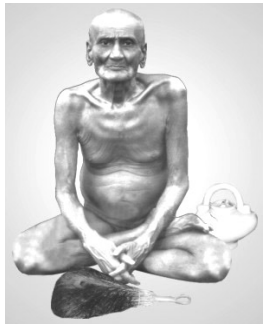

बीसवीं शताब्दी के प्रथम आचार्य चारित्र चक्रवर्ती १०८
श्री शांतिसागर जी महाराज
संक्षिप्त परिचय

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुंदकुंदाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कार गण में बीसवीं शताब्दी में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य-चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

जन्म	–	आषाढ़ बदी 6, सन् 1872
निवास स्थान	–	भोजग्राम (जिला-बेलगाँव) कर्नाटक
नाम	–	सातगौंडा पाटिल
माता-पिता	–	माता-सत्यवती, पिता-भीमगौंडा पाटिल
क्षुल्लक दीक्षा	–	ज्येष्ठ शु. 13, सन् 1914 ग्राम-उत्तूर (जि. कोल्हापुर) महाराष्ट्र
दीक्षा गुरु	–	मुनि 108 श्री देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
ऐलक दीक्षा	–	सन् 1917 गिरनार क्षेत्र, स्वयं भगवान के चरण सानिध्य में
मुनि दीक्षा	–	फाल्गुन शु. 14, सन् 1920 ग्राम-येरनाल (जिला-बेलगांव) कर्नाटक
दीक्षा गुरु	–	मुनि श्री 108 देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
आचार्य पद	–	आश्विन शु. 11, सन् 1924 ग्राम-समडोली (जिला-सांगली-महाराष्ट्र) द्वारा-चतुर्विध संघ
चारित्र चक्रवर्ती पद	–	सन् 1937 गजपंथा सिद्धक्षेत्र (महा.)
समाधिमरण	–	द्वि. भाद्रपद शु. 2, सन् 1955, कुंथलगिरि (सिद्धक्षेत्र)

आचार्य देव ने अनेक दीक्षाएँ देकर चतुर्विध संघ सहित दक्षिण से उत्तर और पूर्वसे पश्चिम तक सारे भारत में मंगल विहार करके दिगम्बर जैन मुनि परंपरा को पुनरुज्जीवितकिया। अनेक तीर्थों पर जिनप्रतिमाएँ स्थापित करायीं, षट्खण्डागम ग्रंथ को ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण कराकरतथा विद्वानों से उनका हिन्दी अनुवाद करवाकर पुस्तकों के रूप में भी प्रकाशित करवाकर जिनवाणी को स्थायित्व प्रदान किया। ऐसे बहुत से जिनधर्म प्रभावना के कार्यों से इस भूतल पर अपने यश को चिरस्थायी कर दिया। आपने अंत में कुंथलगिरि क्षेत्र पर सल्लेखना लेकर अपने जीवनकाल में अपनाआचार्यपद अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर को प्रदान किया था। पुनः उनकी परम्परा में द्वितीय पट्टाचार्य श्री शिवसागर मुनिराज हुए, तृतीय पट्टाचार्य श्री धर्मसागर महाराज, चतुर्थ पट्टाचार्य श्री अजितसागर महाराज, पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज हुए हैं पुनः आचार्य श्री श्रेयांससागर जी महाराजकी सन् 1992 में समाधि होने के पश्चात् उनके पट्ट पर आचार्यश्री अभिनंदनसागर महाराज हुए हैं, जोवर्तमान पट्टाचार्य (छठे पट्टाचार्य) के रूप में चतुर्विध संघ का संचालन करते हुए जिनधर्म की प्रभावना कर रहे हैं।

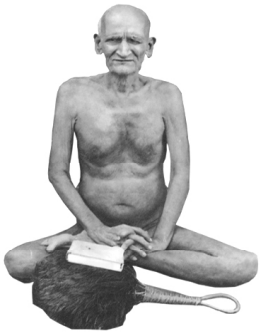

चारित्रचक्रवर्ती
श्री शांतिसागराचार्य के प्रथम पट्टशिष्य
चारित्रशिरोमणि पूज्य आचार्यरत्न
श्री वीरसागर महाराज का परिचय-एक दृष्टि में

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुन्दकुन्दाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कारगण में बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्यश्री वीरसागर महाराज हुए हैं। उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

जन्म	–आषाढ़ शु. 15, सन् 1876, वि.सं. 1933
ग्राम	–वीर गाँव (जि.-औरंगाबाद, महाराष्ट्र)
नाम	–हीरालाल
जाति एवं गोत्र	–खण्डेलवाल जाति एवं गंगवाल गोत्र
पिता	–श्री रामसुख जैन
माता	–श्रीमती भाग्यवती जैन (भागू बाई)
क्षुल्लक दीक्षा	–फाल्गुन शु. 7, सन् 1923 (वि.सं. 1980)
नाम	–श्री वीरसागर महाराज
मुनिदीक्षा	–आश्विन शु. 11, सन् 1924 (वि.सं. 1981)
ग्राम	–समडोली-महाराष्ट्र
दीक्षागुरु	–चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज
आचार्य पद घोषणा	–कुंथलगिरि में आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा प्रथम भाद्रपद शु. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)
आचार्यपदारोहण	–द्वि. भाद्रपद कृ. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)
स्थान	–खानिया-जयपुर (राज.)
समाधिमरण	–आश्विन कृ. अमावस्या, सन् 1957 (वि.सं. 2014)
स्थान	–खानिया-जयपुर (राज.)

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।
2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।
3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।
4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है–कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीन लोक रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, चौबीस मंदिर एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।
5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।
6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।
7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।
8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।
9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली ६ई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।
10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।
11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।
12. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	वर्षायोग ग्रहण व समाप्त करने की तिथि	1
2.	चातुर्मास के लिए कम से कम या अधिक से अधिक दिन की व्यवस्था	2
3.	चातुर्मास में विशेष कारणवश साधुओं का विहार संभव	5
4.	वर्षायोग स्थापना में मंगल कलश की स्थापना कब से शुरू हुई	6
5.	वर्षायोग स्थापना का समय व विधि	7
6.	आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी के दिन करने की क्रियाएँ	11
7.	वंदना योग्य मुद्रा	11
8.	मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना क्रिया	12
9.	मंगल गोचर भक्त प्रत्याख्यान क्रिया कब और कैसे करें	22
10.	मंगलगोचर भक्त प्रत्याख्यान क्रिया	23
11.	वर्षायोग ग्रहण कब और कैसे करें ?	32
12.	वर्षायोग स्थापना विधि	33
13.	वार्षिक प्रतिक्रमण	63
14.	वर्षायोग निष्ठापन क्रिया	63
15.	श्रावण कृष्णा पंचमी को वर्षयोग स्थापना क्यों	64
16.	जिनकल्पी मुनि का चातुर्मास	66
17.	भगवान बाहुबली स्वामी	67
18.	महामुनि सिद्धार्थ और सुकौशल	68
19.	स्थविरकल्पी मुनि के चातुर्मास	69
20.	वर्तमान काल के मुनि	71
21.	तीर्थंकर भगवान वर्षायोग नहीं करते हैं	71
22.	महल के उद्यान में मुनि का चातुर्मास	72
23.	शहर के निकट और मंदिर में मुनि का वर्षायोग	72
24.	क्या परिहारविशुद्धि वाले मुनि वर्षायोग में अन्यत्र गमन करते हैं ?	74
25.	गृहस्थ के घर में मुनि का चातुर्मास	75
26.	धर्मशाला में भी मुनियों के ठहरने का उदाहरण	76
27.	चातुर्मास में श्रावकों द्वारा आहारदान	77
28.	वर्षायोग निष्ठापन क्रिया	79
29.	नूतन पिच्छिका ग्रहण	79
30.	चातुर्मास में विविध पर्व	79

वंदना

सिद्धिं प्राप्ताः समाश्रित्य, योगमध्यात्मनिष्ठितम्।
धर्म्यं शुक्लं च ते सिद्धाः, संतु सिद्धिप्रदा सताम्।।1।।

चतुःषट्वर्षमासांतं, प्रतिमायोगधारिणः।
वृक्षमूलादियोगस्या-भ्यासिनो योगिनायकाः।।2।।

परीषहोपसर्गादिः जयिनो ये जितेन्द्रियाः।
वीरचर्या धरा लोके, महोग्रोग्रतपस्विनः।।3।।

युक्ताहारविहाराश्च, स्वात्मध्यानैकतत्पराः।
आशांबरा गताशाश्च, जिन मुद्रांकिता अपि।।4।।

आर्षमार्गानुसारेण, वर्षायोग विधायिनः।
वंदे तांस्तांस्त्रिशुद्ध्याहं, ते मे कुर्वंतु मंगलम्।।5।।

अर्थ—अध्यात्म से परिपूर्ण ऐसे धर्मध्यान और शुक्लध्यानरूप योग का आश्रय लेकर जिन्होंने सिद्धि को प्राप्त कर लिया है, वे सिद्ध भगवान सज्जन पुरुषों के लिए सिद्धि को प्राप्त करने वाले होवें।

जो चार महीने, छह महीने या वर्ष पर्यन्त प्रतिमायोग को धारण करने वाले हैं तथा वृक्षमूल, अभ्रावकाश और आतापन आदि योग के अभ्यासी हैं, योगियों के स्वामी हैं। परीषह, उपसर्ग आदि के जीतने वाले हैं, जितेन्द्रिय हैं, इस लोक में वीर चर्या को धारण करने वाले हैं तथा महान् उग्र-उग्र तपश्चरण करने वाले महा तपस्वी हैं। जो युक्त-आगमोक्त आहार और विहार करने वाले, अपनी आत्मा के ध्यान में ही तत्पर रहने वाले हैं। आशा-दिशारूपी अम्बर-वस्त्र को धारण करते हुए भी जो गताशा-आशा-तृष्णा से रहित हैं और जिन मुद्रा के चिन्ह से चिन्हित हैं अर्थात् नग्न मुद्रा को धारण करने वाले हैं, जो आर्ष मार्ग के अनुसार वर्षायोग को करने वाले हैं, ऐसे उन-उन साधुओं को मैं मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। वे सभी महा साधुगण मेरे लिए मंगल को करने वाले होवें।

वर्षायोग स्थापना

(चातुर्मास स्थापना)

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गगतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

जैन मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक और क्षुल्लिका आदि चतुर्विध संघ वर्षा ऋतु में एक जगह रहने का नियम कर लेते हैं, अन्यत्र विहार नहीं करते हैं इसलिए इसे वर्षायोग कहा है तथा सामान्यतया श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन चार महीनेपर्यंत एक जगह रहना होता है अतः इसे चातुर्मास भी कहते हैं।

इस वर्षायोग को ग्रहण करने की तथा इसे समाप्त करने की तिथियाँ कौन सी हैं?

[१]"आषाढ़ सुदी चतुर्दशी की पूर्वरात्रि में सिद्धभक्ति आदि विधिपूर्वक इस वर्षायोग को साधुजन ग्रहण करें और कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में विधिपूर्वक उस वर्षायोग को समाप्त कर देवें।"

आगे इसी शास्त्र में और भी विशेष बताते हैं कि—

[२]"श्रमण संघ हेमंत आदि ऋतुओं में अर्थात् मगसिर, पौष आदि महीनों में किसी गाँव, नगर आदि एक स्थान पर एक-एक महीने तक रह सकता है पुनः वह आषाढ़

१. ततश्चतुर्दशीपूर्वरात्रे सिद्धमुनिस्तुती। चतुर्दिक्षु परीत्याल्पाश्चैत्यभक्तीर्गुरुस्तुतिम्।।६६।। शांतिभक्तिं च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यताम्। ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां पश्चाद्रात्रौ च मुच्यताम्।६७।। ...आषाढ़शुक्ल चतुर्दश्यारात्रेः प्रथम प्रहरोद्देशे...पश्चिमयामोद्देशे। कस्यां? ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां कार्तिकस्य कृष्णचतुर्दशीतिथौ। (अनगार धर्मामृत अ. ९ पृ. ६६४)

२. मासं वासोन्यदैकत्र योगक्षेत्रं शुचौ व्रजेत्। मार्गेऽतीते त्यजेच्चार्थवशादपि न लंघयेत्।।६८।। नभश्चतुर्थी तद्याने कृष्णां शुक्लोर्जपंचमीम्। यावन्न गच्छेत्तच्छेदे कथंचिच्छेदमाचरेत्।।६९।।
(अनगार ध.अ.९, पृ. ६६५)

मास में वर्षायोग करने के स्थान पर पहुँच जावे और मगसिर मास पूर्ण हो जाने पर वहाँ नहीं ठहरे अर्थात् मगसिर के बाद अन्यत्र विहार कर जावे तथा प्रयोजनवश भी श्रावण कृष्णा चतुर्थी का उल्लंघन न करे अर्थात् किसी विशेष कारणवश यदि साधु संघ आषाढ़ सुदी चतुर्दशी को वर्षायोग स्थान पर नहीं पहुँच सके तो श्रावणवदी चतुर्थी तक भी वहाँ पहुँचकर वर्षायोग स्थापना करे, ऐसा विधान है किन्तु इस चतुर्थी का उल्लंघन करना उचित नहीं है। आगे कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में वर्षायोग निष्ठापन—समाप्त कर देने पर भी कार्तिक शुक्ला पंचमी के पहले विहार न करें।

यदि कदाचित् दुर्निवार उपसर्ग आदि के निमित्त से इस उपर्युक्त योग का उल्लंघन हो जावे अर्थात् यदि विहार करना ही पड़ जावे तो साधु शास्त्रविहित प्रायश्चित्त ग्रहण करें, ऐसा विधान है।"

अभिप्राय यह हुआ कि साधु और साध्वीगण चातुर्मास के सिवाय अन्य दिनों में एक-एक महीने तक किसी भी गाँव, नगर या शहर में रह सकते हैं अनंतर चातुर्मास काल में आषाढ़ सुदी चतुर्दशी की पूर्व रात्रि में चातुर्मास स्थापना कर लेते हैं पुनः कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में चातुर्मास समाप्त करके वीर निर्वाण संबंधी क्रिया आदि करते हैं पुनः पंचमी के बाद विहार कर सकते हैं, ऐसी आगम की आज्ञा है।

चातुर्मास के लिए कम से कम १०० दिन या अधिक से अधिक १६५ दिनों की आगम व्यवस्था—

आचार्य के छत्तीस गुणों के अंतर्गत दस स्थितिकल्प गुण माने हैं। उनके नाम क्रमशः— आचेलक्य, औद्देशिकपिंडत्याग, शय्याधर पिंडत्याग, राजकीय पिंडत्याग, कृतिकर्म, व्रतारोपण योग्यता, ज्येष्ठता, प्रतिक्रमण, मासैकवासिता और योग हैं। उनमें से मासैकवासिता नाम के नवमें स्थितिकल्प का लक्षण निम्नलिखित है—

[१]"**तीस अहोरात्र**—एक महीने तक किसी एक ग्राम आदि में निवास करना ऐसा जो व्रत है, वह मासैकवासिता है।"

मूलाराधना ग्रंथ में इसी का अर्थ ऐसा किया है कि [२]"वर्षायोग के पहले और वर्षायोग के अनंतर उस स्थान में एक महीना तक रहना।"

मूलाचार में इन्हीं दस स्थितिकल्पों का नाम श्रमणकल्प है। वहाँ पर भी इस नवमें

१. ::मासैकवासिता त्रिंशदहोरात्रमेकत्र ग्रामादौ वसति तद्व्रतः तद्भावः।"
(अनगार धर्मामृत अ.९पृ. ६७४)

२. "टिप्पनके तु योगग्रहणादौ योगावसाने च तस्मिन् स्थाने मासमात्रं तिष्ठति इति मासं नाम नवमः कल्पः। (मूलाराधना पृ. ६१८)

'मास' नामक श्रमणकल्प का ऐसा ही अर्थ है। यथा-[१]"वर्षायोग ग्रहण करने के पहले एक महीने तक वहाँ पर रहकर वर्षाकाल में योग ग्रहण करना चाहिए तथा योग को समाप्त करके एक महीने तक वहाँ रहना चाहिए। ऐसा क्यों? तो लोकस्थिति को समझने के लिए और अहिंसा आदि व्रतों के परिपालन हेतु पहले एक मास तक रहने का विधान है तथा श्रावकजनों के संक्लेश आदि को दूर करने के लिए वर्षायोग समाप्ति के अनंतर भी एक महीने तक वहाँ रहने का विधान है।"

अभिप्राय यह निकला कि साधुगण वर्षायोग के स्थान में एक महीने पहले इसलिए रहें कि वहाँ के वातावरण का निरीक्षण हो जावे कि यह स्थान चातुर्मास के लिए उपयुक्त है या नहीं? हमारे संयम में किसी प्रकार से बाधा तो नहीं आएगी तथा कभी-कभी वर्षा भी पहले से ही शुरू हो जाती है अतः वहाँ के धार्मिक अनुकूल वातावरण को समझने के लिए और अहिंसा महाव्रत आदि के पालन हेतु वे एक महीने पहले से वहाँ स्थान पर रह सकते हैं तथा चातुर्मास समाप्ति के अनंतर भी यदि श्रावकों की विशेष भक्ति अथवा धर्म प्रभावना आदि निमित्त है तो वहाँ पुनरपि एक महीने तक रह सकते हैं अन्यथा श्रावकों के आग्रह करने पर भी यदि साधु विहार कर जाते हैं तो उन्हें संक्लेश हो जाता है इत्यादि कारणों से वे वहाँ रह सकते हैं।

मूलाराधना ग्रंथ में इन दश स्थितिकल्प को श्रमणकल्प नाम दिया है तथा नवमें 'मास' श्रमणकल्प का ऐसा अर्थ किया है कि—

[२]छहों ऋतुओं में से एक-एक ऋतु में एक-एक मासपर्यंत एक जगह रहना और

१. मासौः योगहणात्प्राङ्मासमात्रमवस्थार्नं कृत्वा वर्षाकाले योगो ग्राह्यस्तथा योगं समाप्य मासमात्रमवस्थानं कर्तव्यं। लोकस्थितजिज्ञापनार्थमहिंसादिव्रतपरिपालनार्थं च योगात् प्राङ्गमासमात्रमवस्थानस्य (म्) पश्चाच्च मासमात्रावस्थानं श्रावकलोकादि संक्लेश परिहरणाय।" (मूलाचार सटीक, समयसाराधिकार पृ. १०४)

२. "ऋतुषु षट्सु एकैकमेव माससमकेत्र वसतिरन्यदा विहरति इत्ययं नवमः स्थितिकल्पः।'.....पज्जो समणकप्पो नाम दशमः। वर्षाकालस्य चतुर्षु मासेषु एकत्रैवावस्थानं भ्रमणत्यागः। स्थावर-जंगमजीवाकुला हि तदा क्षितिः। तदा भ्रमणे महानसंयमः वृष्टया शीतवातपातेन वात्मविराधना। पतेद्वाप्यादिषु स्थाणुकंटकादिभिर्वा प्रच्छन्नैर्जलेन कर्दमेन वा बाध्यते इति बिंशत्यधिकं दिवसशतं एकत्रावस्थानमित्युत्सर्गः। कारणापेक्षया तु हीनाधिकं वावस्थानं संयतानां आषाढ़ शुद्धदशम्यां स्थितानां उपरिष्ठाच्च कार्तिक पौर्णमास्यास्त्रिंशद्दिवसावस्थानं। वृष्टिबहुलता श्रुतग्रहणं शक्त्यभावैवयावृत्यकरणं प्रयोजनमुद्दिश्य अवस्थानमेकत्रेति उत्कृष्टः कालः। मार्या दुर्भिक्षे ग्राम जनपदचलने वा गच्छनाशनिमित्ते समुपस्थिते देशांतरं याति। अवस्थाने सति रत्नत्रयविराधना भविष्यतीति। पौर्णमा स्यामाषाढयामतिक्रांतायां प्रतिपदादिनेषु याति। यावच्चत्यकत्वा विंशतिदिवसा एतदपेक्ष्य हीनता कालस्य एष दशमः स्थितिकल्पः। (मूलाराधना पृष्ठ ६१८)

अन्यथा एक-एक मास विहार करना यह नवमां स्थितिकल्प है" तथा दशवें 'पर्या' नामक श्रमणकल्प का लक्षण इस प्रकार किया है कि—

"दशवां पर्या नाम का श्रमणकल्प है। वर्षाकाल में चार महीने एक जगह रहना, भ्रमण का त्याग करना, यह इसका अर्थ है। चूंकि वर्षाकाल में यह पृथ्वी स्थावर और त्रस जीवों से सहित हो जाती है, ऐसे समय में यदि मुनि विहार करेंगे तो महान असंयम होगा अथवा जलवर्षा और शीत हवा के निमित्त से उनकी आत्मा का विघात होगा अर्थात् रोग आदि हो जाने से अपघात आदि हो सकता है। इस मौसम में पृथ्वी पर जल की बहुलता होने से कहीं पर यदि जल के गड्ढे आदि ढके हुये हैं—ऊपर से नहीं दिख रहे हैं, उन पर घास या रेत आदि पड़ गयी है, उन गड्ढों पर पैर पड़ जाने से उनमें गिरने आदि की संभावना हो सकती है अथवा पैर आदि फिसल जाने से कहीं भी बावड़ी- गड्ढे आदि में पड़ सकते हैं अथवा ठूंठ, काँटे आदि से या जलवृष्टि से भी बाधा हो सकती है इत्यादि दोषों से बचने के लिए एक सौ बीस दिन तक एक स्थान पर रहना, यह उत्सर्ग नियम है। कारणवश इससे कम या अधिक दिवस भी निवास किया जाता है।

संयतजन आषाढ़ सुदी दशमी से लेकर कार्तिक सुदी पूर्णिमा के अनन्तर भी और एक मास तक अर्थात् मगसिर सुदी पूर्णिमा तक भी वहाँ पर रह सकते हैं। वृष्टि की बहुलता, श्रुत का अध्ययन, शक्ति का अभाव, अन्य साधुओं की वैयावृत्ति आदि प्रयोजनों के निमित्त से अधिक दिन भी रहा जा सकता है।

मारी रोग के हो जाने पर, दुर्भिक्ष के आ जाने पर, ग्राम के अथवा देश के लोगों का अपना स्थान छोड़कर अन्यत्र जाने का प्रसंग आ जाने पर, संघ के विनाश होने के निमित्तों के उपस्थित हो जाने पर इत्यादि कारणों से मुनि वर्षायोग में भी अन्यत्र जा सकते हैं। यदि वे वहीं पर रहते हैं तो रत्नत्रय की विराधना हो जाएगी इसलिए आषाढ़ सुदी पूर्णिमा के व्यतीत हो जाने पर भी प्रतिपदा आदि तिथि में वे अन्यत्र चले जाते हैं अर्थात् "प्रतिपदा"[१] से चतुर्थी तक चार दिन में कहीं अन्यत्र योग्य स्थान में पहुँच सकते हैं इसलिए एक सौ बीस दिनों में बीस दिन कम किए जाते हैं। इस तरह काल की हीनता का विधान है।" यह सब दशवें स्थितिकल्प का वर्णन है।

अभिप्राय यह हुआ कि श्रमण संघ आषाढ़ सुदी चतुर्दशी से लेकर कार्तिक सुदी पूर्णिमा तक चार महीने के एक सौ बीस दिन तक एकत्र निवास करता है यह उत्सर्ग

१. पौर्णमास्यामाषाढ्यामतिक्रांतायां प्रतिपदादिषु दिनेषु यावच्चत्वारो दिवसा एतदपेक्ष्य हीनता कालस्य"। (मूलाराधना पृ.६१८)

अर्थात् राजमार्ग है और इसी कारण से इसे चातुर्मास भी कहते हैं किन्तु कारणवश अधिक दिन अर्थात् आषाढ़ सुदी दशमी से लेकर मगसिर सुदी पूर्णिमा तक भी एक जगह रहते हैं। अथवा वर्षायोग ग्रहण के एक मास पहले और एक मास अनन्तर भी रहने का विधान होने से आषाढ़ वदी एकम् से मगसिर वदी अमावस्या तक ऐसे साढ़े पाँच महीने अर्थात् एक सौ पैंसठ दिन भी रहते हैं जैसा कि पहले मूलाचार में कथित नवम स्थितिकल्प के लक्षण से स्पष्ट है अर्थात् वर्षायोग की समापन विधि कार्तिक वदी चतुर्दशी को हो जाती है, इस हिसाब से साढ़े पाँच महीने लिया है। अथवा चातुर्मास के सामान्यतया चार महीने लेने से तथा उसके आदि और अंत के एक-एक महीने को ले लेने से छः महीने भी एकत्र रह सकते हैं, ऐसा परंपरागत अर्थ लिया जाता है इसी प्रकार से चातुर्मास में कदाचित् अधिक मास के आ जाने से भी एक मास और अधिक हो जाता है। यह सब अधिक दिनों की गणना में सम्मिलित है।

कम दिनों के वर्णन में एक सौ बीस दिन में बीस दिन घटाने से सौ दिन का भी वर्षायोग होता है। श्रावण कृष्णा चतुर्थी से कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी तक सौ दिन ही होते हैं। यथा श्रावण कृष्णा पंचमी से पूर्णिमा तक २५, भाद्रपद और आश्विन के ३०-३० तथा कार्तिक वदी एकम् से अमावस्या तक १५ ऐसे २५+३०+३०+१५=१०० दिनों का भी वर्षायोग आगम से मान्य है। इस तरह से चातुर्मास का हेतु और उसमें अधिक से अधिक तथा कम से कम दिनों का वर्णन किया गया है।

चातुर्मास के दिनों में विशेष कारणवश साधुओं को विहार करने की आगम आज्ञा—

चातुर्मास में साधु विशेष धर्मकार्य या सल्लेखना आदि निमित्त से अड़तालीस कोश तक विहार कर सकते हैं। स्पष्टीकरण-

[१]वर्षा ऋतु में देव और आर्ष संघसंबंधी कोई बड़ा कार्य आ जाने पर यदि साधु बारह योजन तक चला जाए, तो कोई दोष नहीं है।"

अर्थात् चातुर्मास में यदि कहीं अन्यत्र किसी साधु ने सल्लेखना ग्रहण कर ली है अथवा और कोई विशेष ही कार्य है तो साधु बारह योजन अर्थात् एक योजन में चार कोश होने से १२×४=४८ कोश तक विहार करके जा सकता है।

इस प्रकार से वर्षायोग की स्थापना करने वाले मुनिगण या आर्यिकाएँ आदि सल्लेखना आदि विशेष प्रसंगों में छ्यानवे मील तक विहार कर सकते हैं पुनः वे वापस वहीं आ जाते हैं।

१. वर्षास्वतुच्छकार्येण.....। योजनानि दश द्वे च कार्ये गच्छन्न दोष भाक्।।५८।। (प्रायश्चित्त समुच्चय)

वर्षायोग स्थापना में मंगलकलश स्थापना कब से शुरू हुई?—

मैंने बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज, उनके प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाचार्य गुरुवर्य श्री वीरसागर जी महाराज, आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज एवं आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज के संघ सानिध्य में वर्षायोग-चातुर्मास स्थापना देखी है एवं उनके साथ स्थापना की है।

इनमें से किन्हीं भी आचार्यों ने एवं आचार्य देशभूषण जी आदि आचार्यों ने चातुर्मास स्थापना के समय मंगलकलश स्थापित नहीं कराया था।

मुझे आश्चर्य होता है कि कोई साधु एक मंगल कलश स्थापना करते हैं तो कोई-कोई तीन, सात, नौ, इक्कीस तथा कोई साधु एक सौ आठ मंगल कलश स्थापित करने लगे हैं। उनकी ऊँची-ऊँची बोलियों से ही साधुओं की महानता को आंका जाने लगा है।

सबसे अधिक आश्चर्य तो तब हुआ, जब मैंने स्वयं देखा—एक ग्राम के मंदिर में एक काँचकेस में मंगल कलश रखा था। चातुर्मास के बाद साधु वहाँ से विहार कर चुके थे, फिर भी प्रतिदिन लोग भगवान के दर्शन के बाद उस कलश के आगे चावल चढ़ाकर घुटने टेककर पंचांग नमस्कार कर रहे थे। मैंने पूछा-ऐसा क्यों? तब भक्तों ने कहा—मुझे गुरुदेव की आज्ञा है आदि.....।

पोस्टर एवं कुंकुम पत्रिका में भी "चातुर्मास स्थापना समारोह" या "वर्षायोग स्थापना समारोह" न छपाकर "मंगल कलश स्थापना समारोह" छपने लगा है।

यह "मंगल कलश स्थापना" न तो कहीं आचारसार, मूलाचार, भगवती आराधना आदि मुनियों के आचार ग्रंथों में है और न कहीं उमास्वामी श्रावकाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, वसुनंदिश्रावकाचार, सागारधर्मामृत आदि श्रावकाचार ग्रंथों में ही है।

अतः मुझे "वर्षायोग स्थापना" के दिन यह मंगल कलश स्थापना करना इष्ट नहीं है। यह परम्परा कब, कैसे एवं किसके द्वारा प्रारंभ की गई तथा अनेक साधुसंघ उसका अनुसरण क्यों करने लग गये ? यह समझ में नहीं आता है।

****

वर्षायोग स्थापना का समय व विधि

(अनगार धर्मामृत के आधार से)

अभिषेकवन्दनाक्रियां मङ्गलगोचरक्रियां च लक्षयति[1] —

सा नन्दीश्वरपदकृतचैत्या त्वभिषेकवन्दनास्ति तथा।
मङ्गलगोचरमध्यान्हवन्दना योगयोजनोज्झनयोः।।६४।।

सा तु सैव नन्दीश्वरक्रिया **अभिषेकवन्दनास्ति** जिनमहास्नपनदिवसे वन्दना भवति। कीदृशी ? **नन्दीश्वरपदकृतचैत्या** नन्दीश्वरस्थानपठितचैत्या। **तथा** सैवाभिषेकवन्दना भवति। कासौ ? **मङ्गलगोचरमध्यान्हवन्दना।** कयोः ? **योगयोजनोज्झनयो**र्वर्षायोग-ग्रहणविसर्जनयोः। मङ्गलगोचरे मङ्गलार्थगोचारे मध्यान्हवन्दना मङ्गलगोचरमध्यान्हवन्दना।

उक्तं च —

अहिसेय[2] वंदणासिद्धचेदिपंचगुरुसंतिभत्तीहिं।
कीरइ मंगलगोयर मज्झंण्हियवंदणा होइ।।

मङ्गलगोचरबृहत्प्रत्याख्यानविधिमाह-

लात्वा बृहत्सिद्धयोगिस्तुत्या मङ्गलगोचरे।
प्रत्याख्यानं बृहत्सूरिशान्तिभक्ती प्रयुञ्जताम्।।६५।।

प्रयुञ्जतां प्रयोजयन्तु आचार्यादयः। के ? *बृहत्सूरिशान्तिभक्ती* बृहतीमाचार्यभक्तिं बृहतीं च शान्तिभक्तिम्। किं कृत्वा ? **लात्वा** गृहीत्वा। किं तत् ? **प्रत्याख्यानं** भक्तप्रत्याख्यानम्। क्व ? **मङ्गलगोचरे।** कया ? **बृहत्सिद्धयोगिस्तुत्या** बृहत्या सिद्धभक्त्या बृहत्या च योगिभक्त्या। प्रयुञ्जतामित्यत्र बहुत्वनिर्देशः सर्वैर्मिलित्वा कार्योयं विधिरिति बोधयति।।

वर्षायोगग्रहणमोक्षविध्युपदेशार्थं श्लोकद्वयमाह —

ततश्चतुर्दशीपूर्वरात्रे सिद्धमुनिस्तुती।
चतुर्दिक्षु परीत्याल्पाश्चैत्यभक्तीर्गुरुस्तुतिम्।।६६।।
शान्तिभक्तिं च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यताम्।
ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां पश्चाद्रात्रौ च मुच्यताम्।।६७।।युग्मम्।।

ततः प्रत्याख्यानप्रयोगविध्यनन्तरं गृह्यतां प्रतिष्ठाप्यताम्। कोसौ ? **वर्षायोगः**। कैः? आचार्यादिश्रमणैः। किं **कुर्वाणैः** ? कुर्वाणैः साधुत्वेन कुर्वद्भिः। के ? **सिद्धमुनिस्तुती**

१. अनगार धर्मामृत अध्याय ९। २. अभिषेकवन्दनासिद्धचैत्यपञ्चगुरुशान्तिभक्तिभिः। क्रियते मङ्गलगोचरमाध्यान्हिकवन्दना भवति।।

सिद्धभक्तिं योगिभक्तिं च। क्व ? **चतुर्दशीपूर्वरात्रे** आषाढ़शुक्लचतुर्दश्या रात्रेः प्रथमप्रहरोद्देशे न केवलं, **चैत्यभक्तीश्च** कुर्वाणैः। किंविशिष्टाः ? **अल्पा** लघ्वीः। अर्थाच्चतस्रः। कया? **परीत्या** प्रदक्षिणया। कासु ? **चतुर्दिक्षु** चतसृषु पूर्वादिककुप्सु। तद्यथा। "यावन्ति जिनचैत्यानि" इत्यादिश्लोकं पठित्वा वृषभाजितस्वयंभूस्तवद्वयमुच्चार्य चैत्यभक्तिं साञ्चलिकां पठेत्। इति पूर्वदिक्चैत्यालयवन्दना। एवं दक्षिणादिदिक्त्रयेपि नवरमुत्तरोत्तरौ द्वौ द्वौ स्वयंभूस्तवौ प्रयोक्तव्यौ। **चतुर्दिक्षु** भावेनैव प्रदक्षिणा कार्यास्थानस्थैरेव च योगतण्डुलाः प्रक्षेप्तव्या इति वृद्धव्यवहारः। न केवलं, **गुरुस्तुतिं** च पञ्चगुरुभक्तिं, न केवलं, **शान्तिभक्तिं** च कुर्वाणैः। तुर्विशेषे। तथा **मुच्यतां** च निष्ठाप्यतां **वर्षायोगः** श्रमणैस्तेनैव विधानेन। क्व ? **पश्चाद्रात्रौ** पश्चिमयामोद्देशे। कस्याम् ? [1]**ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां** कार्तिकस्य कृष्णचतुर्दशीतिथौ।

तच्छेषविधिं श्लोकद्वयेनाह —

मासं वासोन्यदैकत्र योगक्षेत्रं शुचौ व्रजेत्।
मार्गेतीते त्यजेच्चार्थवशादपि न लङ्घयेत्।।६८।।
नभश्चतुर्थी तद्याने कृष्णां शुक्लोर्जपञ्चमीम्।
यावन्न गच्छेत्तच्छेदे कथंचिच्छेदमाचरेत्।।६९।। (युग्मम्)

वासो निवासः श्रमणैः कर्तव्य इति शेषः। कियन्तं कालम्? मासम्। क्व ? **अन्यदा** हेमन्तादिऋतुषु। क्व ? **एकत्रैकस्मिन्स्थाने** नगरादौ ? तथा **व्रजेद्** गच्छेत् श्रमणसंघः। कम् ? **योगक्षेत्रं** वर्षायोगस्थानम्। क्व ? **शुचौ** आषाढ़े। त्यजेच्च श्रमणगणः। किं तत् ? योगक्षेत्रम् । क्व ? **मार्गे** मार्गशीर्षे मासि। किंविशिष्टे ? **अतीते**ऽतिक्रान्ते। तथा **न लङ्घये**न्नातिक्रामेत्। काम् ? **नभश्चतुर्थी** श्रावणस्य चतुर्थतिथिम् ? किंविशिष्टाम् ? कृष्णामसिताम्। क्व ? **तद्याने** योगक्षेत्रगमने। कस्मात् ? **अर्थवशादपि** प्रयोजनवशेनापि। तथा साधुसंघो **न गच्छेत्** स्थानान्तरे न विहरेदर्थवशादपि। कथम् ? **शुक्लोर्जपञ्चमीं** यावत् सितां कार्तिकपञ्चमीतिथिमवधीकृत्य। तथा साधुसंघः **छेदं** प्रायश्चित्त**माचरे**दनुतिष्ठेत्। क्व सति। तच्छेदे यथोक्तयोगप्रयोगातिक्रमे। कथंचिद्दुर्निवारोपसर्गादिना।

ऊपर जो नन्दीश्वर जिनचैत्यवन्दना की क्रिया बताई गई है वही क्रिया जिन भगवान के अभिषेक के समय करनी चाहिए। अन्तर इतना है कि यहाँ पर नन्दीश्वर भक्ति न करके चैत्यभक्ति ही की जाती है। इसी प्रकार वर्षायोग के ग्रहण करने पर और उसके समापन पर यह अभिषेक वंदना की विधि ही मंगलगोचरमध्यान्हवन्दना कही जाती है।

१. 'कार्तिकासितचतुर्दशीतिथौ' इति पाठः श्रेयान्।

अर्थात् सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति के द्वारा अभिषेकवंदना की जाती है और इन्हीं के द्वारा मंगलगोचर मध्यान्हवन्दना भी हुआ करती है।

मंगलगोचर बृहत्प्रत्याख्यान की विधि बताते हैं—

मंगलगोचर क्रिया करने में आचार्य आदि को बृहत् सिद्धभक्ति और बृहत् योगिभक्ति करके भक्त प्रत्याख्यान को ग्रहण कर बृहत् आचार्यभक्ति और बृहत् शांतिभक्ति करनी चाहिए। यहाँ पर "प्रयुञ्जताम्" यह बहुवचन क्रिया का जो निर्देश किया है, उससे इस बात का बोध कराया है कि यह क्रिया आचार्य आदि सब संघ को मिलकर करनी चाहिए।

प्रकरण के अनुसार दो श्लोकों में वर्षायोग के ग्रहण और त्याग करने की विधि का उपदेश करते हैं—

ऊपर भक्त प्रत्याख्यान को ग्रहण करने की जो विधि बताई है तदनुसार उसके ग्रहण करने के अनंतर आचार्य- प्रभृति साधुओं को वर्षायोग का प्रतिष्ठापन करना चाहिए और चातुर्मास के अंत में उसका निष्ठापन करना चाहिए। इस प्रतिष्ठापन और निष्ठापन की विधि इस प्रकार है—

चार लघु चैत्यभक्तियों को बोलते हुए और पूर्वादिक चारों ही दिशाओं की प्रदक्षिणा देते हुए आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की रात्रि को पहले ही प्रहर में सिद्धभक्ति और योगिभक्ति का भी अच्छी तरह पाठ करते हुए और पंचगुरुभक्ति तथा शांतिभक्ति को भी बोलकर आचार्य और इतर सम्पूर्ण साधुओं को वर्षायोग का प्रतिष्ठापन करना चाहिए।

भावार्थ—पूर्व दिशा की तरफ मुख करके वर्षायोग का प्रतिष्ठापन करने के लिए "यावन्ति जिनचैत्यानि" इत्यादि श्लोक का पाठ करना चाहिए पुनः आदिनाथ भगवान और दूसरे अजितनाथ भगवान इन दोनों का ही स्वयंभू स्तोत्र बोलकर अंचलिका सहित चैत्यभक्ति करनी चाहिए। यह पूर्व दिशा की तरफ की चैत्य-चैत्यालय की वंदना है। इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की तरफ की वंदना भी क्रम से करनी चाहिए। अंतर इतना है कि जिस प्रकार पूर्व दिशा की वंदना में प्रथम, द्वितीय तीर्थंकर का स्वयंभूस्तोत्र बोला जाता है, उसी प्रकार दक्षिण दिशा की तरफ तीसरे, चौथे संभवनाथ और अभिनंदननाथ का पश्चिम की तरफ की वंदना करते समय पाँचवें, छठे सुमतिनाथ और पद्मप्रभु भगवान का और उत्तर दिशा की वंदना करते समय सातवें, आठवें सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभु का स्वयंभूस्तोत्र बोलना चाहिए और बाकी क्रिया पूर्व दिशा के समान ही समझनी चाहिए।

यहाँ पर चारों दिशाओं की प्रदक्षिणा करने के लिए जो लिखा है, उस विषय में वृद्धसम्प्रदाय ऐसा है कि पूर्वदिशा की तरफ मुख करके और उधर की वंदना करके वहीं

बैठे-बैठे केवल भावरूप से ही प्रदक्षिणा करनी चाहिए।

यह वर्षायोग के प्रतिष्ठापन की विधि है, यही विधि निष्ठापन में भी करनी चाहिए अर्थात् कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि को अंतिम प्रहर में पूर्वोक्त विधान के अनुसार ही आचार्य और साधुओं को वर्षायोग का निष्ठापन कर देना चाहिए।

वर्षायोग के सिवाय दूसरे समय—हेमन्त आदि ऋतु में भी आचार्य आदि श्रमण संघ को किसी भी एक स्थान या नगर आदि में एक महीने तक के लिए निवास करना चाहिए तथा आषाढ़ में मुनिसंघ को वर्षायोगस्थापन के लिए जाना चाहिए अर्थात् जहाँ चातुर्मास करना है वहाँ आषाढ़ में पहुँच जाना चाहिए और मगसिर महीना पूर्ण होने पर उस क्षेत्र को छोड़ देना चाहिए परन्तु इतना और भी विशेष है कि उस योगस्थान पर जाने के लिए श्रावण कृष्णा चतुर्थी का अतिक्रमण कभी नहीं करना चाहिए।

भावार्थ—यदि कोई धर्मकार्य ऐसा विशेष प्रसंग उपस्थित हो जाए कि जिसमें रुक जाने से योगक्षेत्र में आषाढ़ के भीतर पहुँचना न बन सके, तो श्रावण कृष्णा चतुर्थी तक पहुँच जाना चाहिए परन्तु इस तिथि का उल्लंघन किसी प्रयोजन के वशीभूत होकर भी करना उचित नहीं है। इसी प्रकार साधुओं को कार्तिक शुक्ला पंचमी तक योगक्षेत्र के सिवाय अन्यत्र प्रयोजन रहते हुए भी विहार न करना चाहिए अर्थात् यद्यपि वर्षायोग का निष्ठापन कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को हो जाता है फिर भी साधुओं को कार्तिक शुक्ला पंचमी तक उसी स्थान पर रहना चाहिए। यदि कोई कार्य विशेष हो, तो भी तब तक उस स्थान से नहीं जाना चाहिए।

****

आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी के दिन करने की क्रियाएँ

(वर्षायोग समापन हेतु कार्तिक कृ. १३ को भी यही क्रियाएँ करना है)

मंगलगोचर क्रिया कब और कैसे करें?

''मंगलगोचरमध्याह्नवंदना योगयोजनोज्झनयोः[१]।''

वर्षायोग ग्रहण और समापन के पूर्व दिन मंगलगोचरी—आहार के पहले यह 'मंगलगोचर मध्यान्ह वंदना' की जाती है अर्थात् आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी के मध्यान्ह में मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना करके साधुगण आहार के लिए जाते हैं पुनः आहार से आकर 'मंगलगोचर वृहत्प्रत्याख्यान' नाम से गुरु के पास उपवासरूप प्रत्याख्यान ग्रहण करते हैं, अनंतर चौदश का उपवास करके रात्रि में वर्षायोग क्रिया करके वर्षायोग ग्रहण कर लेते हैं।

ऐसे ही कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन आहार से पूर्व मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना करके आहार के बाद वृहत्प्रत्याख्यान ग्रहण करके चतुर्दशी का उपवास करके चतुर्दशी की पिछली रात्रि में वर्षायोग की निष्ठापना कर देते हैं। इस मंगलगोचर मध्यान्ह वंदना में सिद्ध, चैत्य, पंचगुरु और शांति ये चार भक्तियाँ पढ़ी जाती हैं।

मध्यान्ह की देववंदना में चैत्य एवं पंचगुरु ये दो भक्तियाँ की जाती हैं किन्तु उपर्युक्त इन दोनों त्रयोदशी में इसी देववंदना में आदि-अन्त में दो भक्तियाँ बढ़ जाती हैं।

यद्यपि शास्त्रों में मध्यान्ह सामायिक के बाद आहार का कथन है फिर भी आजकल आहार के बाद मध्यान्ह की सामायिक—देववंदना की जाती है। जो भी हो, इस मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना को आहार के पहले कर लेने में कोई बाधा नहीं है। इसकी विधि निम्न प्रकार है-

वन्दना योग्य मुद्रा

मुद्रा के चार भेद हैं—जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दनामुद्रा, मुक्ताशुक्तिमुद्रा। इन चारों मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं।

जिनमुद्रा—दोनों पैरों में चार अंगुल प्रमाण अन्तर रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटकाकर कायोत्सर्गरूप से खड़े होना सो जिनमुद्रा है। **योगमुद्रा**—पद्मासन, पर्यंकासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित रखने को जिनेन्द्रदेव योगमुद्रा कहते हैं। **वन्दना मुद्रा**—दोनों हाथों को मुकुलितकर और कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए पुरुष के या बैठे हुए के वन्दना मुद्रा होती है। **मुक्ताशुक्तिमुद्रा**—दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और

१. अनगार धर्मामृत

दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए या बैठे हुए को आचार्य मुक्ताशुक्तिमुद्रा कहते हैं।

मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना क्रिया

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर पंचांग नमस्कार करें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से सामायिक दंडक पढ़ें।

(णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर सिद्धभक्ति पढ़ें।)

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा कायेण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त कर एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से या बैठकर योगमुद्रा से सत्ताईस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर ''थोस्सामिस्तव'' पढ़ें।)

थोस्सामिस्तव

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे।।१।।

लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।

उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।

एवं मए अभित्थुया, विहुय-रयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पहासत्ता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके वन्दनामुद्रा से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

सिद्धभक्ति

सिद्धानुद्भूतकर्मप्रकृतिसमुदयान्साधितात्मस्वभावान् ।
वंदे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः।।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारात्।
योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः।।१।।

नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-
रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी।।
ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरूपसमाहारविस्तारधर्मा।
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः।।२।।

स त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या-
सम्पद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः।।
कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्य-सम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ।।३।।

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं संप्रतृप्यन्वितन्वन्,
धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुसभं प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा।।
आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयंभू प्रवृत्तः।।४।।

छिन्दन्शेषानशेषान्निगलबलकलींस्तैरनन्तस्वभावैः
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावै-
रूर्ध्वव्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेग्र्ये।।५।।

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह -
व्यापत्त्यादयुग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।।६।।

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं।
वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निष्प्रतिद्वन्द्वभावम् ।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममभितं शाश्वतं सर्वकालं।
उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ।।७।।

नार्थः क्षुत्तृट्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या-
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्नहि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात् ।
आतंकार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते।।८।।

तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपः संयमज्ञानदृष्टि-
चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रिवततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः।
भूता भव्या भवन्तः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैः
तान्सर्वान्नौम्यनंतान्निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ।।९।।

-क्षेपक श्लोक-आर्या-

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्टदोषविरहितं सुपरिशुद्धम् ।
अतिभक्ति-संप्रयुक्तो, यो वंदते स लघु लभते परमसुखम्।।

अंचलिका —इच्छामि भंत्ते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं

सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पयट्ठियाणं तवसिद्धाणं-णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं-चरित्तसिद्धाणं अतीताणागदवट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. १२ से सामायिक दंडक पढ़कर ९ जाप्य करके पृ.१२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर वन्दनामुद्रा से चैत्यभक्ति पढ़ें।)

चैत्यभक्ति

(हरिणीछंद)

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गी-भावाद्विवित्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम् ।।२।।

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम् ।।३।।

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।।५।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ।।६।।

मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ।।११।।

द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम् ।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम् ।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम् ।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।

श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान् ।।२०।।

वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम् ।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।

इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।

अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ।।२३।।

लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामल विशालकूलद्वितयम् ।।२४।।

शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्ति सिकतासुभगम् ।।२५।।

क्षान्त्यावर्तसहस्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम्।
दुःसहपरीषहाख्य-द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२६।।

व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् ।।२७।।

ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रो-द्रेकितनिर्घोषविविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्त्रवसंवरणनिर्जरानिःस्त्रवणं।।२८।।

गणधरचक्रधरेन्द्र-प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैःपुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ।।२९।।

अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

—पृथ्वी छंद—

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात् ,
कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकतः।।
विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ।।३१।।

निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ।।३२।।

मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचन्दन - प्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादि - दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुर - मपीक्षणानां प्रियम् ।।३३।।

हितार्थपरिपंथिभिः, प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडल - मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

तदेतदमरेश्वर - प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीय - चरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

अनन्तर चैत्य—जिनप्रतिमा के सम्मुख बैठकर नीचे लिखी अंचलिका पढ़ें-

आलोचना या अंचलिका—**इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरिय-लोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतर-जोइसियकप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।**

(पुनः खड़े होकर मुक्ताशुक्तिमुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति कर पूर्वोक्त सामायिक दंडक पढ़ें। अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर पुनः पंचांग नमस्कार कर खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। पश्चात् थोस्सामि इत्यादि चतुर्विंशति स्तव पढ़कर अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। अनन्तर भगवान के सन्मुख पूर्वोक्त रीति से खड़े-खड़े ही वंदनामुद्रा से नीचे लिखी पंच महागुरुभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके प्राकृत पंचगुरुभक्ति पढ़ें।)

पंचमहागुरुभक्ति

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं।।१।।

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथद्दयं जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं।।२।।

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया, वारसंगाइं सुअजलहि-अवगाहया।
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासं गया।।३।।

घोरसंसार-भीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया।।४।।

उग्गतवचरणकरणेहिं झीणंगया, धम्मवरझाणसुक्केझाणं गया।
णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहवो ते महं मोक्खपहमग्गया।।५।।

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं।।६।।

अरुहा सिद्धाइरिया,उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण णमुक्कारा, भवे भवे मम सुहं दिंतु।।७।।

आलोचना या अंचलिका

(पुनः गवासन से बैठकर नीचे लिखा आलोचना पाठ पढ़ें।)

इच्छामि भन्ते! पंचगुरुभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अट्ठमहा-पाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव (प्राकृत या हिन्दी) पढ़कर संस्कृत या हिन्दी की शांतिभक्ति पढ़ें।)

शांतिभक्ति

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् ! पाददद्वयं ते प्रजाः।
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः, संसारघोरार्णवः।।
अत्यन्तस्फुरदुग्ररश्मिनिकर-व्याकीर्णभूमण्डलो।
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिल-च्छायानुरागं रविः।।१।।

क्रुद्धाशीर्विषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो।
विद्याभेषजमन्त्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा।।
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुग-स्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्।
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा, शाम्यन्त्यहो! विस्मयः।।२।।

संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते।
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्, पीडाः प्रयान्ति क्षयं।।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता।
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा, शीघ्रं यथा शर्वरी।।३।।

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यन्तरौद्रात्मकान् ।
नानाजन्मशतान्तरेषु पुरतो, जीवस्य संसारिणः।।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना, कालोग्रदावानला-
न्नस्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगावारणम्।।४।।

लोकालोकनिरन्तरप्रविततज्ञानैकमूर्ते! विभो!।
नानारत्नपिनद्धदंडरुचिरश्वेतातपत्रत्रय! ।।
त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः।
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः।।५।।

दिव्यस्त्रीनयनाभिराम! विपुलश्रीमेरुचूडामणे!
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामंडल!।।
अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं, त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते।।६।।

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः, श्रीभास्करो भासयं-
स्तावद्-धारयतीह पंकजवनं, निद्रातिभारश्रमम् ।।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदय-
स्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्।।७।।

शांतिं शान्तिजिनेन्द्र! शांतमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्।
संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शांत्यर्थिनः प्राणिनः।।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शांत्यष्टकं भक्तितः।।८।।

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम्।।९।।

पंचममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिंद्र-नरेन्द्रगणैश्च।
शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि।।१०।।

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे, यस्य विभाति च मंडलतेजः।।११।।

तं जगदर्चितशांतिजिनेन्द्रं, शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं, मह्यमरं पठते परमां च।।१२।।

येभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः।
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः।।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपाः।
तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु।।१३।।

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।१४।।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं।।
दुर्भिक्षं चोरिमारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्वसौख्यप्रदायि।।१५।।

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः, संतन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण, रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे।।१६।।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शांतिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः।।१७।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! संतिभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीसाति-सयविशेषसंजुत्ताणं, बत्तीसदेवेंदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं, बलदेववा-**

सुदेवचक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं, थुइसयसहस्साणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धचैत्यपंचगुरुशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिक-दोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक ९ जाप्य, थोस्सामिपूर्वक कायोत्सर्ग विधि करके हिन्दी की समाधिभक्ति पढ़ें।)

समाधि भक्तिः

अथेष्ट प्रार्थना-**प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः**

**शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः।।१।।**

**तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेंद्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः।।२।।**

**अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं
तं खमउ णाणदेवय! मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु।।३।।**

अंचलिका —**इच्छामि भंते! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तयसरूवपरमप्पज्झाणलक्खणसमाहिभत्तीए, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

****

मंगलगोचर भक्त प्रत्याख्यान क्रिया कब और कैसे करें?

इस क्रिया के बाद साधुगण आहार करके आकर सामूहिकरूप से आचार्यश्री के समक्ष बैठकर प्रत्याख्यान ग्रहण करें। उसकी विधि निम्न प्रकार है-

मंगलगोचर भक्त प्रत्याख्यान क्रिया

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् दण्डक, जाप्य, थोस्सामि करके सिद्धभक्ति पढ़ें।)

प्राकृत सिद्धभक्ति का पद्यानुवाद

(अथवा प्राकृत या संस्कृत की सिद्धभक्ति भी पढ़ सकते हैं)

श्री सिद्धचक्र सब आठ कर्म, विरहित औ आठ गुणों युत हैं।
अनुपम हैं सब कार्य पूर्ण कर, अष्टम पृथ्वी पर स्थित हैं।।
ऐसे कृतकृत्य सिद्धगण का, हम नितप्रति वंदन करते हैं।
मन वचन काय की शुद्धी से, शिरसा अभिनन्दन करते हैं।।१।।

तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए, बिन तीर्थंकर जो सिद्ध हुए।
जल से थल से जो सिद्ध हुए, जो भी आकाश से सिद्ध हुए।।
जो हुए अंतकृत केवलि या, बिन हुए सिद्धि को प्राप्त हुए।
उत्तम जघन्य मध्यम तनु की, अवगाहन धर जो सिद्ध हुए।।२।।

जो ऊर्ध्वलोक औ अधोलोक, औ तिर्यक् लोक से सिद्ध हुए।
उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के भी, छह कालों से जो सिद्ध हुए।।
उपसर्ग सहन कर सिद्ध हुए, उपसर्ग बिना भी सिद्ध हुए।
उन सबको वंदूँ ढाई द्वीप, दो समुद्र से जो सिद्ध हुए।।३।।

मति-श्रुत से केवलज्ञान प्राप्त, या तीन ज्ञान या चार सहित।
केवलज्ञानी हो सिद्ध हुए, पाँचों संयम या चार सहित।।
संयम समकित औ ज्ञान आदि से, च्युत हो पुनि ग्रह सिद्ध हुए।
जो संयम समकित ज्ञान आदि से, बिना पतित हो सिद्ध हुए।।४।।

जो साधु संहरण सिद्ध बिना, संहरण प्राप्त हो सिद्ध हुए।
जो समुद्घात कर सिद्ध हुए, बिन समुद्घात भी सिद्ध हुए।।
खड्गासन और पर्यंकासन से, कर्म नाश कर सिद्ध हुए।
उन परम ज्ञानयुत सिद्धों को, मैं वंदूँ त्रिकरण शुद्धि किए।।५।।

जो भाव पुरुषवेदी मुनिवर, वर क्षपक श्रेणि चढ़ सिद्ध हुए।
जो भाव नपुंसक वेदी भी, थे पुरुष ध्यान धर सिद्ध हुए।।

जो भाववेद स्त्री होकर भी, द्रव्य पुरुष अतएव उन्हें।
हो शुक्लध्यान सिद्धि जिससे, सब कर्म नाश कर सिद्ध बने।।६।।

प्रत्येकबुद्ध और स्वयंबुद्ध, औ बोधित बुद्ध सुसिद्ध बनें।
उन सबको पृथक्-पृथक् प्रणमूँ, औ एक साथ भी नमूँ उन्हें।।७।।

पण नव दो अट्ठाईस चार, तेरानवे दो औ पाँच प्रकृति।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, सब सिद्ध हुए प्रणमूँ नित प्रति।।८।।

जो अतिशय अव्याबाध सौख्य, औ अनंत अनुपम परम कहा।
इंद्रिय विषयों से रहित पूर्व, अप्राप्त-ध्रौव्य को प्राप्त किया।।९।।

लोकाग्रशिखर पर स्थित वे, अंतिम तनु से किंचित् कम हैं।
गल गया मोम सांचे अंदर, आकार सदृश आकृति धर हैं।।१०।।

वे जन्म-मरण औ जरा रहित, सब सिद्ध भक्ति से नुति उनको।
बुधजन प्रार्थित औ परम शुद्ध, वर ज्ञानलाभ देवो मुझको।।११।।
बत्तिस दोषों से रहित शुद्ध, जो कायोत्सर्ग विधी करके ।
अतिभक्तीयुत वंदन करते, वे तुरतहिं परम सौख्य लभते।।१२।।

अंचलिका (चौबोल छंद)-

हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ, जो सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।
अठविध कर्मरहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयम सिद्ध चरितसिध जो।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।
दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधि मरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. १२ से थोस्सामि पढ़कर संस्कृत या हिन्दी की योगभक्ति पढ़ें।)

योगिभक्ति

(संस्कृत का पद्यानुवाद)

(अथवा संस्कृत की योगिभक्ति पृ. ३४ से पढ़ें)

जन्म-जरा बहु मरण रोग अरु, शोक सहस्त्रों से तापित।
दुःसह नरक पतन से डरते, सम्यग्बोध हुआ जाग्रत।।
जलबुदबुदवत् जीवन चंचल, विद्युतवत् वैभव सारे।
ऐसा समझ प्रशमहेतू मुनि-जन वन का आश्रय धारें।।१।।

पंच महाव्रत पंच समिति, त्रय गुप्ति सहित हैं मोह रहित।
शम सुख को मन में धारण कर, चर्या करते शास्त्र विहित।।
ध्यान और अध्ययनशील नित, इन दोनों के वश रहते।
कर्म विशुद्धी करने हेतू, घोर तपश्चर्या करते।।२।।

ग्रीष्म ऋतू में सूर्य किरण से, तपी शिलाओं पर बैठें।
मल से लिप्त देहयुत निस्पृह, कर्म बंध को शिथिल करें।।
काम-दर्प-रति-दोष-कषायों, से मत्सर से रहित मुनीश।
पर्वत के शिखरों पर रवि के, सन्मुख मुख कर खड़े यतीश।।३।।

सम्यग्ज्ञान सुधा को पीते, पाप ताप को शांत करें।
क्षमा नीर से पुण्यकाय का, वे मुनि सिंचन नित्य करें।।
धरें सदा संतोष छत्र को, तीव्र ताप संताप सहें।
ऐसे मुनिवर ग्रीष्म काल में, कर्मेन्धन को शीघ्र दहें।।४।।

वर्षाऋतु में मोरकण्ठ सम, काले इन्द्रधनुष वाले।
खूब गरजते शीतल वर्षा, वज्रपात बिजली वाले।।
ऐसे मेघों को लखकर वे, मुनिगण सहसा रात्रि में।
पुनरपि वृक्षतलों में बैठें, निर्भय ध्यान धरें वन में।।५।।

मूसल जलधारा बाणों से, ताड़ित होते मुनिपुंगव।
फिर भी चारित से नहिं डिगते, सदा अटल नरसिंह सदृश।।
भव दुःख से भयभीत परीषह, शत्रू का संहार करें।
शूरों में भी शूर महामुनि, वीरों में भी वीर बनें।।६।।

शीत में बरफ कणों से पीड़ित, महाधैर्य कंबल ओढ़ें।
चतुष्पथों में खड़े शीत की, रात बितावें ध्यान धरें।।७।।

आतापन तरुमूल चतुष्पथ, इस विध तीन योगधारी।
सकल तपश्चर्याशाली नित, पुण्य योग वृद्धिंकारी।।
परमानन्द सुखामृत इच्छुक, वे भगवान महामुनिगण।
हमको श्रेष्ठ समाधि शुक्ल, शुचि ध्यान प्रदान करें उत्तम।।८।।

ग्रीष्म ऋतू में गिरि शिखरों पर, वर्षा रात्रि में तरु तल।
शीतकाल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूँ प्रतिपल।।९।।

पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगम्बर हैं रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।१०।।

-अंचलिका-

हे भगवन्! इस योगभक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसकी आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।१।।

मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूँ वंदूँ नमस्कार भी, करूँ सतत वंदना करूँ।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।३।।

पुनः सभी शिष्य-मुनि, आर्यिकायें आदि आचार्यश्री से उपवास मांगें या अस्वस्थ आदि हों, उपवास नहीं कर सकते हों तो गुरु की आज्ञा से अगले दिन आहार लेने तक प्रत्याख्यान मांगें। तब आचार्यदेव स्वयं उपवास आदि ग्रहण कर सबको उपवास आदि प्रदान करें। अनंतर सभी शिष्यवर्ग मिलकर आचार्य वंदना करें-

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यवंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं आचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. १२ से सामायिक दंडक पढ़कर, ९ जाप्य करके पृ. १२ से थोस्सामि स्तव पढ़कर आचार्यभक्ति पढ़ें।)

आचार्य भक्ति

(संस्कृत का हिन्दी पद्यानुवाद)

सिद्ध गुणों की स्तुति में तत्पर, क्रोध अग्नि का नाश किया।
गुप्ती से परिपूर्ण मुक्तियुत, सत्य वचन से भरित हिया।।१।।

मुनि महिमा से जिनशासन के, दीपक भासुरमूर्ति स्वभाव।
सिद्धि चाहते कर्मरजों के, कारण घातन में पटुभाव।।२।।
गुणमणि विरचित तनु षट् द्रव्यों, की श्रद्धा के नित आधार।
दर्शनशुद्ध प्रमादीचर्या, रहित संघ सन्तुष्टीकार।।३।।
उग्र तपस्वी मोहरहित शुभ, शुद्ध हृदय शोभन व्यवहार।
प्रासुक जगह निवास पापहत, आश कुपथ विध्वंसि विचार।।४।।
दशमुंडनयुत दोषरहित, आहारी मुनिगण से अति दूर।
सकल परीषहजयी क्रिया में, तत्पर नित प्रमाद से दूर।।५।।
व्रत में अचलित कायोत्सर्गयुत, कष्ट दुष्ट लेश्या से हीन।
विधिवत् गृहत्यागी निर्मलतनु, इन्द्रियविजयी निद्राहीन।।६।।
उत्कुटिकासन धरें विवेकी, अतुल अखण्डित स्वाध्यायी।
राग-लोभ-शठ-मद-मात्सर्यों, रहित पूर्ण शुभ परिणामी।।७।।
धर्मशुक्ल से भावित शुचिमन, आर्तरौद्र द्वय पक्ष रहित।
कुगतिविनाशी पुण्यऋद्धि के, उदय सहित गारवविरहित।।८।।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश में राग सहित।
बहुजन हितकर चरित अभय, निष्पाप महान् प्रभाव सहित।।९।।
इन सब गुण से युक्त तुम्हें, स्थिर योगी आचार्य प्रधान।
बहुत भक्तियुत विधिवत् मुकुलित, करपुट कमल धरूँ शिरधाम।।१०।।
नमूँ तुम्हें कर्मोदय संभव, जन्म-जरा-मृति बंध रहित।
होवे इति शिव-अचल-अनघ, अक्षय-निर्बाध मुक्तिसुख नित।।११।।

-अंचलिका-

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।१।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारितयुत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशकवर्य।।२।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्व साधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।४।।

इस तरह आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें। आचार्य भी परोक्ष में ही गुरु की वंदना करते हैं।

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग आदि करके संस्कृत या हिन्दी शांति भक्ति पढ़ें।)

शांतिभक्ति

(संस्कृत का हिन्दी पद्यानुवाद)

(अथवा पृ. २० से संस्कृत की भक्ति पढ़ें)

भगवन् ! सब जन तव पद युग की, शरण प्रेम से नहिं आते।
उसमें हेतु विविध दुःखों से, भरित घोर भववारिधि हैं।।
अतिस्फुरित उग्र किरणों से, व्याप्त किया भूमण्डल है।
ग्रीषम ऋतु रवि राग कराता, इंदुकिरण छाया जल में।।१।।
कुद्धसर्प आशीविष डसने, से विषाग्नियुत मानव जो।
विद्या औषध मंत्रित जल, हवनादिक से विष शांति हो।।
वैसे तव चरणाम्बुज युग-स्तोत्र पढ़ें जो मनुज अहो।
तनु नाशक सब विघ्न शीघ्र, अति शांत हुए आश्चर्य अहो।।२।।
तपे श्रेष्ठ कनकाचल की, शोभा से अधिक कांतियुत देव।
तव पद प्रणमन करते जो, पीड़ा उनकी क्षय हो स्वयमेव।।
उदित रवी की स्फुट किरणों से, ताड़ित हो झट निकल भगे।
जैसे नाना प्राणी लोचन-द्युतिहर रात्रि शीघ्र भगे।।३।।
त्रिभुवन जन सब जीत विजयि बन, अतिरौद्रात्मक मृत्यूराज।
भव-भव में संसारी जन के, सन्मुख धावे अति विकराल।।
किस विध कौन बचे जन इससे, काल उग्र दावानल से।
यदि तव पादकमल की स्तुति-नदी बुझावे नहीं उसे।।४।।
लोकालोक निरन्तर व्यापी, ज्ञानमूर्तिमय शान्ति विभो।
नानारत्न जटित दण्डेयुत, रुचिर श्वेत छत्रत्रय हैं।।
तव चरणाम्बुज पूतगीत रव, से झट रोग पलायित हैं।
जैसे सिंह भयंकर गर्जन, सुन वन हस्ती भगते हैं।।५।।
दिव्यस्त्रीदृगसुन्दर विपुला, श्रीमेरु के चूड़ामणि।
तव भामण्डल बाल दिवाकर, द्युतिहर सबको इष्ट अति।।

अव्याबाध अचिंत्य अतुल, अनुपम शाश्वत जो सौख्य महान्।
तव चरणारविंदयुगलस्तुति, से ही हो वह प्राप्त निधान।।६।।

किरण प्रभायुत भास्कर भासित, करता उदित न हो जब तक।
पंकजवन नहिं खिलते, निद्राभार धारते हैं तब तक।।
भगवन् ! तव चरणद्वय का हो, नहीं प्रसादोदय जब तक।
सभी जीवगण प्रायः करके, महत् पाप धारें तब तक।।७।।

शांति जिनेश्वर शांतचित्त से, शांत्यर्थी बहु प्राणीगण।
तव पादाम्बुज का आश्रय ले, शांत हुए हैं पृथिवी पर।।
तव पदयुग की शांत्यष्टकयुत, संस्तुति करते भक्ति से।
मुझ भाक्तिक पर दृष्टि प्रसन्न, करो भगवन् ! करुणा करके।।८।।

शशि सम निर्मल वक्त्र शांतिजिन, शीलगुण व्रत संयम पात्र।
नमूँ जिनोत्तम अंबुजदृग को, अष्टशतार्चित लक्षण गात्र।।९।।

चक्रधरों में पंचमचक्री, इन्द्र नरेन्द्र वृंद पूजित।
गण की शांति चहूँ षोडश-तीर्थंकर नमूँ शांतिकर नित।।१०।।

तरु अशोक सुरपुष्पवृष्टि, दुंदुभि दिव्यध्वनि सिंहासन।
चमर छत्र भामण्डल ये अठ, प्रातिहार्य प्रभु के मनहर।।११।।

उन भुवनार्चित शांतिकरं, शिर से प्रणमूँ शांति प्रभु को।
शांति करो सब गण को मुझको, पढ़ने वालों को भी हो।।१२।।

मुकुटहारकुंडल रत्नों युत, इन्द्रगणों से जो अर्चित।
इन्द्रादिक से सुरगण से भी, पादपद्म जिनके संस्तुत।।
प्रवरवंश में जन्मे जग के, दीपक वे जिन तीर्थंकर।
मुझको सतत शांतिकर होवें, वे तीर्थेश्वर शांतिकर।।१३।।

संपूजक प्रतिपालक जन, यतिवर सामान्य तपोधन को।
देश राष्ट्र पुर नृप के हेतू, हे भगवन् ! तुम शांति करो।।१४।।

सभी प्रजा में क्षेम नृपति, धार्मिक बलवान् जगत में हो।
समय-समय पर मेघवृष्टि हो, आधि व्याधि का भी क्षय हो।।
चोरि मारि दुर्भिक्ष न क्षण भी, जग में जन पीड़ाकर हो।
नित ही सर्व सौख्यप्रद जिनवर, धर्मचक्र जयशील रहो।।१५।।

—क्षेपक श्लोक—

वे शुभद्रव्य क्षेत्र अरु काल, भाव वर्तें नित वृद्धि करें।
जिनके अनुग्रह सहित मुमुक्षू, रत्नत्रय को पूर्ण करें।।१६।।

घातिकर्म विध्वंसक जिनवर, केवलज्ञानमयी भास्कर।
करें जगत में शांति सदा, वृषभादि जिनेश्वर तीर्थंकर।।१७।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! श्री शांतिभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसके।
आलोचन करने की इच्छा, करना चाहूँ मैं रुचि से।।

अष्टमहाप्रातिहार्य सहित जो, पंचमहाकल्याणक युत।
चौंतिस अतिशय विशेष युत, बत्तिस देवेन्द्र मुकुट चर्चित।।

हलधर वासुदेव प्रतिचक्री, ऋषि मुनि यति अनगार सहित।
लाखों स्तुति के निलय वृषभ से, वीर प्रभू तक महापुरुष।।

मंगल महापुरुष तीर्थंकर, उन सबको शुभ भक्ती से।
नित्यकाल मैं अर्चूं, पूजूँ, वंदूँ, नमूँ महामुद से।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्ध-योगि-आचार्यशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक आदि पूर्वक कायोत्सर्ग करके समाधिभक्ति पढ़ें।)

समाधिभक्ति

(संस्कृत का हिन्दी पद्यानुवाद)

(अथवा पृ. ५९ से संस्कृत की समाधिभक्ति पढ़ें)

स्वात्मरूप के अभिमुख, संवेदन को श्रुतदृग् से लखकर।
भगवन् ! तुमको केवलज्ञान, चक्षु से देखूँ झट मनहर।।१।।

शास्त्रों का अभ्यास जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्रजन के गुण गाऊँ, दोष कथन में मौन सतत।।

सबसे प्रिय हित वचन कहूँ, निज आत्म तत्त्व को नित भाऊँ।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव-भव में इन सबको पाऊँ।।२।।

जैनमार्ग में रुचि हो अन्य, मार्ग निर्वेग हों भव-भव में।
निष्कलंक शुचि विमल भाव हों, मति हो जिनगुण स्तुति में।।३।।

गुरुपदमूल में यतिगण हों, अरु चैत्यनिकट आगम उद्घोष।
होवे जन्म-जन्म में मम, संन्यासमरण यह भाव जिनेश।।४।।

जन्म-जन्म कृत पाप महत अरु, जन्म करोड़ों में अर्जित।
जन्म-जरा-मृत्यू के जड़ वे, जिन वंदन से होते नष्ट।।५।।

बचपन से अब तक जिनदेवदेव! तव पाद कमल युग की।
सेवा कल्पलता सम मैंने, की है भक्तिभाव धर ही।।
अब उसका फल माँगूँ भगवन् ! प्राण प्रयाण समय मेरे।
तव शुभ नाम मंत्र पढ़ने में, कंठ अकुंठित बना रहे।।६।।

तव चरणाम्बुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरणयुग में।
तावत् रहे जिनेश्वर! यावत्, मोक्षप्राप्ति नहिं हो जग में।।७।।

जिनभक्ती ही एक अकेली, दुर्गति वारण में समरथ।
जन का पुण्य पूर्णकर मुक्ति-श्री को देने में समरथ।।८।।

पंच अरिंजय नाम पंच-मतिसागर जिन को वंदूँ मैं।
पंच यशोधर नमूँ पंच-सीमंधर जिन को वंदूँ मैं।।९।।

रत्नत्रय को वंदूँ नित, चउवीस जिनवर को वंदूँ मैं।
पंचपरमगुरु को वंदूँ, नित चारण चरण को वंदूँ मैं।।१०।।

"अर्हं" यह अक्षर है ब्रह्मरूप, पंचपरमेष्ठी का वाचक।
सिद्धचक्र का सही बीज है, उसको नमन करूँ मैं नित।।११।।

अष्टकर्म से रहित मोक्ष-लक्ष्मी के मंदिर सिद्ध समूह।
सम्यक्त्वादि गुणों से युत, श्रीसिद्धचक्र को सदा नमूँ।।१२।।

सुरसंपति आकर्षण करता, मुक्तिश्री को वशीकरण।
चतुर्गति विपदा उच्चाटन, आत्म-पाप में द्वेष करण।।
दुर्गति जाने वाले का, स्तंभन मोह का सम्मोहन।
पंचनमस्कृति अक्षरमय, आराधन देव! करो रक्षण।।१३।।

अहो अनंतानंत भवों की, संतति का छेदन कारण।
श्री जिनराज पदाम्बुज है, स्मरण करूँ मम वही शरण।।१४।।

अन्य प्रकार शरण नहिं जग में, तुम ही एक शरण मेरे।
अतः जिनेश्वर करुणा करके, रक्ष मेरी रक्षा करिये।।१५।।

त्रिभुवन में नहिं त्राता कोई, नहिं त्राता है नहिं त्राता।
वीतराग प्रभु छोड़ न कोई, हुआ न होता नहिं होगा।।१६।।

जिन में भक्ती सदा रहे, दिन-दिन जिनभक्ती सदा रहे।
जिन में भक्ती सदा रहे, मम भव-भव में भी सदा रहे।।१७।।

तव चरणाम्बुज की भक्ती को, जिन! मैं याचूँ मैं याचूँ।
पुनः पुनः उस ही भक्ति की, हे प्रभु! याचन करता हूँ।।१८।।

विघ्नसमूह प्रलय हो जाते, शाकिनि भूत पिशाच सभी।
श्री जिनस्तव करने से ही, विष निर्विष होता झट ही।।१९।।

दोहा-

भगवन् ! समाधिभक्ति अरु, कायोत्सर्ग कर लेत।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेत।।१।।

रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ उसे।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।

****

वर्षायोग ग्रहण कब और कैसे करें?

ततश्चतुर्दशीपूर्वरात्रे सिद्धमुनिस्तुती,
चतुर्दिक्षु परीत्याल्पाश्चैत्यभक्तिगुरुस्तुती।।६६।।
शांतिभक्तिं च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यतां,
ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां पश्चाद्रात्रौ च मुच्यताम्।।६७।।

ततः अर्थात् मंगलगोचर प्रत्याख्यान ग्रहण करने के बाद "आषाढ़ शुक्ला चतुर्दश्या रात्रेः प्रथमप्रहरोद्देशे"आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के दिन पूर्वरात्रि में साधुवर्ग वर्षायोग ग्रहण करें—वर्षायोग ग्रहण की भक्तियाँ पढ़कर वर्षायोग—चातुर्मास की स्थापना कर लेवें। इसमें पहले सिद्धभक्ति और योगिभक्ति करें पुनः प्रदक्षिणारूप से चारों दिशाओं में अंचलिका सहित चैत्यभक्ति पढ़ें। इस भक्ति में "यावंति जिनचैत्यानि" इत्यादि श्लोक बोलकर "स्वयंभुवा भूतहितेन" इत्यादि स्वयंभूस्तोत्र की दो स्तुतियाँ

पढ़कर चैत्यभक्ति पढ़कर पूर्वदिशा के चैत्यालयों की वंदना करें। ऐसे ही स्वयंभू स्तोत्र की आगे-आगे की दो-दो स्तुतियाँ पढ़कर चैत्यभक्ति पढ़ते हुए दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा के चैत्यालयों की भावों से ही वंदना करें। इस चतुर्दिक् वंदना में वहाँ पर स्थित जनों को "योगतंदुल"—पीले चावल का प्रक्षेपण करना चाहिए, ऐसा वृद्धव्यवहार—पुरानी परंपरा है।

इसके बाद पंचमहागुरुभक्ति और शांतिभक्ति करके वर्षायोग ग्रहण की क्रिया पूर्ण करें।

वर्षायोग स्थापना विधि

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

विशेष—कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में यही विधि करके वर्षायोग समापन किया जाता है।

मुक्ताशुक्ति मुद्रा से तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृ. १२ से सामायिक दंडक पढ़ें। पुनः ९ जाप्य करके पृ. १२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर "सिद्धानुद्धूत" इत्यादि सिद्धभक्ति पढ़ें।

सिद्धभक्ति

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदयान्साधितात्मस्वभावान् ।
वंदे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः।।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारात्।
योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः।।१।।

नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-
रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी।।
ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरूपसमाहारविस्तारधर्मा।
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः।।२।।

स त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या-
सम्पद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः।।
वैकल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्य-सम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ।।३।।

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं संप्रतृप्यन्वितन्वन्,
धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुसभं प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा।।
आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयंभू प्रवृत्तः।।४।।

छिन्दन्शेषानशेषान्निगलबलकलींस्तैरनन्तस्वभावैः
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावै-
रूर्ध्वंव्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेग्र्ये।।५।।

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह -
व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।।६।।

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं।
वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निष्प्रतिद्वन्द्वभावम् ।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममममितं शाश्वतं सर्वकालं।
उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ।।७।।

नार्थः क्षुत्तृट्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या-
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्नहि मृदुशयनैर्गानिनिद्राद्यभावात् ।
आतंकार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते।।८।।

तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपः संयमज्ञानदृष्टि-
चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः।
भूता भव्या भवन्तः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैः
तान्सर्वान्नौम्यनंतान्निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ।।९।।

-क्षेपक श्लोक-आर्या-

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्टदोषविरहितं सुपरिशुद्धम् ।
अतिभक्ति-संप्रयुक्तो, यो वंदते स लघु लभते परमसुखम्।।

अंचलिका—**इच्छामि भंत्ते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पयट्ठियाणं तवसिद्धाणं-णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं-चरित्तसिद्धाणं अतीताणागदवट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य और थोस्सामि करके योगिभक्ति पढ़ें)।

योगिभक्ति

-दुवई छंद-

जाति-जरोरु-रोगमरणा-तुरशोक-सहस्रदीपिताः।
दुःसह-नरक-पतन-सन्त्रस्त-धियः प्रतिबुध-चेतसः।।
जीवित-मंबुबिंदु-चपलं तडि-दभ्र-समा विभूतयः।
सकल-मिदं विचिन्त्य मुनयः प्रशमाय वनान्त-माश्रिताः।।१।।

भद्रिका छंद-

व्रतसमिति-गुप्तसंयुताः शमसुख-माधाय मनसि वीतमोहाः।।
ध्यानाध्ययन-वशंगताः, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति।।२।।

दिनकर-किरण-निकर-संतप्त-शिला-निचयेषु निस्पृहाः।
मलपटला-वलिप्त-तनवः शिथिली-कृत-कर्मबंधनाः।।
व्यपगत-मदन-दर्परतिदोष-कषाय-विरक्त-मत्सराः।
गिरिशिखरेषु चंडकिरणा-भिमुख-स्थितयो दिगंबराः।।३।।

सज्ज्ञाना-मृत-पायिभिः क्षान्तिपयः सिच्यमान-पुण्यकायैः।
धृतसंतोष-च्छत्रकैः, तापस्-तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः।।४।।

शिखिगल-कज्जला-लिमलिनै-र्विबुधा-धिप-च पचित्रितैः।
भीमरवै-र्विसृष्ट-चण्डाशनि-शीतल-वायु-वृष्टिभिः।।
गगनतलं विलोक्य जलदैः स्थगितं सहसा तपोधनाः।
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशंक-मासते।।५।।

जलधारा-शर-ताडिता न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।
संसारदुःख-भीरवः परीषहा-राति-घातिन-प्रवीराः।।६।।

अविरत-बहल-तुहिन-कणवारिभि-रंघ्रिप-पत्रपातनैः
अनवरत-मुक्त-सीत्कार-रवैःपरुषैः-
रथानिलैः शोषित-गात्र-यष्टयः।

इह श्रमणा धृतिकंबला-वृताः शिशिर-निशां।
तुषार-विषमां गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः।।७।।

इति योग-त्रय धारिणः सकल-तपः-शालिनः प्रवृद्ध-पुण्यकायाः।
परमानंद-सुखैषिणः समाधि-मग्रयं दिशंतु नो भदन्ताः।।८।।

गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसरे वाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।९।।

गिरिकंदरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिं।।१०।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! योगिभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु आदावण-रुक्ख-मूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्क-पास-कुक्कुडासण-चउत्थ-पक्ख-खवणादियोग-जुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

अथ पूर्वदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्।।

श्री ऋषभजिनस्तोत्रं

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले, समंज-सज्ञान-विभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः, क्षपाकरेणेव गुणोत्करैःकरैः।।१।।

-अथ पूर्वदिक् वंदना-

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्।।

श्रीवृषभदेव स्तुति

शेरछंद- प्रभु आप स्वयंभू जगत में प्राणिहित करा।
सज्ज्ञानविभव चक्षु धरें मोह तम हरा।।
निजगुणसमूह रश्मि से अघ ध्वांत विनाशें।
ऐसे जिनेन्द्र चन्द्रमा भूतल में सुशोभें।।१।।

प्रजापति-र्यः प्रथमं जिजीविषुः, शशास कृष्यादिषु-कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुन-रद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः।।२।।
विहाय यः सागरवारि-वाससं, वधू-मिवेमां वसुधावधूं सतीम् ।
मुमुक्षु-रिक्ष्वाकु-कुलादि-रात्मवान्, प्रभु प्रवव्राज सहिष्णु-रच्युतः।।३।।
स्वदोष-मूलं स्वसमाधि-तेजसा, निनाय यो निर्दय-भस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगते-ऽर्थिनेऽजसा, बभूव च ब्रह्म-पदा-मृतेश्वरः।।४।।
स विश्वचक्षु-र्वृषभोऽर्चितः सतां, समग्रविद्यात्म-वपुर्निरंजनः।
पुनातु चेतोमम नाभिनन्दनो, जिनो जितक्षुल्लक-वादिशासनः।।५।।

।। इति ऋषभजिनस्तोत्रम् ।।

श्री अजितजिनस्तोत्रं

यस्य प्रभावात्त्रिदिव-च्युतस्य, क्रीडास्वपि क्षीव-मुखारविन्दः।
अजेयशक्ति-र्भुवि बन्धुवर्गः, चकार नामाजित इत्यवन्ध्यम् ।।१।।

युग के प्रथम सब जीवितेच्छु प्रजा के लिए।
सिखलाई प्रजापती ने कृषि आदि क्रियाएँ।।
फिर तत्त्वबोध प्राप्त कर अद्भुत विभव धरा।
ममता से हो विरक्त तुम हुए विदांवरा।।२।।
सागर सुवस्त्र धारती वसुंधरा सती।
पत्नी सदृश इसको तजा पण इंद्रियाँ जितीं।।
इच्छ्वाकु कुल के आदि पुरुष प्रभू मुमुक्षू।
दैगम्बरी दीक्षा ग्रही अच्युत हो सहिष्णू।।३।।
सब दोष के जड़ कर्म को निजध्यान अग्नि से।
निर्दय हुए प्रभु भस्मसात् कर दिया तुमने।।
सौख्याभिलाषि जग को सत्य तत्त्व बताया।
फिर ब्रह्मपद को प्राप्त कर ईश्वरपना पाया।।४।।
वे विश्वज्ञानचक्षु वृषभ सत्पुरुष अर्चित।
सम्पूर्ण विद्यामय तनु कर्मांजनों विरहित।।
सब क्षुद्रवादि संप्रदाय जीत जिन हुए।
हे नाभिललन मेरा मन पवित्र कीजिए।।५।।

श्री अजितनाथ स्तुति

प्रभु स्वर्ग से अवतीर्ण हुए तुम प्रभाव से।
सब बन्धुओं के मुखकमल खिलते हैं हर्ष से।।

अद्यापि यस्या-जितशासनस्य, सतां प्रणेतुः प्रतिमंगलार्थम् ।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं, स्वसिद्धि-कामेन जनेन लोके।।२।।

यः प्रादु-रासीत्-प्रभुशक्ति-भूम्ना, भव्याशया-लीन-कलंकशान्त्यै।
महामुनि-मुर्क्तघनोपदेहो, यथा-रविन्दा, भ्युदयाय भास्वान् ।।३।।

येन प्रणीतं पृथुधर्म-तीर्थं, ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गांगं ह्रदं चन्दन-पंकशीतं, गज-प्रवेका इव धर्म-तप्ताः।।४।।

स ब्रह्मनिष्ठः-सममित्रशत्रु-र्विद्याविनि-र्वान्त-कषायदोषः।
लब्धात्म-लक्ष्मी-रजितो-ऽजितात्मा, जिनः श्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ।।५।।

इत्यजितजिनस्तोत्रम्

सब खेल में भी वे अजेयशक्ति हों यहाँ।
इस हेतु "अजित" नाम ये सार्थक प्रभो कहा।।१।।

सत्पुरुष के नायक अजय्य शासनं कहा।
तुम नाम भी परम पवित्र आज भी यहाँ।।
स्वसिद्धि के इच्छुक मनुष्य नाम को जपते।
प्रत्येक मंगलार्थ "अजित" नाथ को नमते।।२।।

प्रभुत्व महाशक्ति से प्रभु आप उदित हों।
भव्यों के हृदय के कलंक शांति हेतु हो।।
सब कर्म सघन लेपरहित महामुनि हो।
जैसे कमल विकसित करे भास्कर उदय अहो।।३।।

तुमने विशाल श्रेष्ठ धर्म तीर्थ प्रकाशा।
जीवों ने इसे प्राप्त करके दुःख को जीता।।
गजराज जैसे धूप से पीड़ित हुए आके।
चन्दन समान शीत गंगनीर में न्हाते।।४।।

स्वब्रह्म में निलीन मित्र-शत्रु में समता।
सज्ज्ञानचरित्र में कषाय दोष को हता।।
स्वात्मा की लक्ष्मी प्राप्त जितेन्द्रिय अजित अहो !!
भगवन् ! मुझे अर्हंतलक्ष्मी दीजिए प्रभो !।।५।।

इत्यजितजिनस्तोत्रम्

नमोऽस्तु वर्षायोग प्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. १२ से सामायिक दंडक,९ जाप्य और पृ. १२ से थोस्सामिस्तव करके लघु चैत्यभक्ति पढ़ें।)

लघुचैत्यभक्तिः

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु, नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके, सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानाम् ।।१।।

अवनि-तल-गतानां कृत्रिमा-कृत्रिमाणां
वन-भवन-गतानां दिव्यवैमानिकानाम् ।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि।।२।।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्रत्रये ये भवाः
चन्द्राम्भोज-शिखंडिकंठ-कनक-प्रावृड्-घनाभा जिनाः।

नमोऽस्तु वर्षायोग प्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. १२ से सामायिक दंडक,९ जाप्य और पृ. १२ से थोस्सामिस्तव करके लघु चैत्यभक्ति पढ़ें।)

लघु चैत्यभक्ति (हिन्दी पद्यानुवाद)

भरत आदि क्षेत्रों में हिमवन, आदि सभी पर्वत ऊपर।
नन्दीश्वर द्वीपों में पाँचों, मेरू के अस्सी मंदिर।।
मध्यलोक में जितने भी, जिनवर के मंदिर शाश्वत हैं।
उन सबको मैं नितप्रति वंदूँ, वे भवदधि से तारक हैं।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष-वैमानिक देवों के गृह में।
पृथ्वीतल में कृत्रिम-अकृत्रिम जितने भी जिनगृह हैं।।
इस जग में मनुजों से निर्मित, सुरनर से पूजित मंदिर।
भावसहित उन सबको वंदूँ, स्मरण करूं मैं शिर नत कर।।२।।

जम्बूद्वीप धातकी पुष्कर-अर्ध अढाई द्वीपों में।
रत्नत्रयधर तीर्थंकर हों, इक सौ सत्तर क्षेत्रों में।।
श्वेत लाल नीले स्वर्णिम अरु, हरित वर्ण के जिनवर ये।
कर्मेंधन को भस्म किया, त्रयकालिक जिन को वंदन है।।३।।

सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धना।
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।।३।।

श्रीमन्-मेरौ कुलाद्रौ रजत-गिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे।
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषाङ्के।
ईष्वाकारे-ऽञ्जनाद्रौ दधिमुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोके-ऽभिवन्दे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि।।४।।

द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्र-नीलप्रभौ
द्वौ बन्धूक-समप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गु प्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिताः सन्तप्त-हेमप्रभाः
ते संज्ञान-दिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः।।५।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! चेइयभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि**

मेरु कुलाचल रजतगिरी, जम्बू शाल्मलि तरु गिरि वक्षार।
चैत्यवृक्ष मनुजोत्तर अंजन, दधिमुख रतिकर इष्वाकार।
कुंडल रुचकाचल इन सब पर, जिनगृह भावन व्यंतर के।
ज्योतिष के स्वर्गों के जिनगृह, इन सबको प्रणमूँ रुचि से।।४।।
कुंदकुसुम शशि बर्फ हार सम, धवल चंद्रप्रभु सुविधि हैं।
इन्द्रनील सम दो जिन लाल-कमल सम दो व हरित दो हैं।।
सोलह जिनवर तपे स्वर्णसम, जन्ममृत्युहत सुरनुत हैं।
ये सज्ज्ञानसूर्य चौबिस जिन, हम सबको सिद्धी देवें।।५।।

अंचलिका —

भगवन्! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन संतोष।।
अधो-मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ सतत।।२।।

सव्वाणि तीसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्प-वासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति, अहमवि इह संतो तत्थसंताइं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

प्राग्दिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धाः, योगिगणास्तानहं वंदे ।।

इति पूर्वदिक् वंदना।

अथ दक्षिणदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

श्री संभवजिनस्तोत्रं

त्वं शम्भवः संभव-तर्षरोगैः, संतप्य-मानस्य जनस्य लोके।
आसी-रिहा-कस्मिक एव वैद्यो, वैद्यो यथा नाथ! रुजां प्रशान्त्यै।।१।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण सम्पत् होवे।।३।।

प्राग्दिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धाः, योगिगणास्तानहं वंदे ।।

इति पूर्वदिक् वंदना।

अथ दक्षिणदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

संभवजिन स्तुति

संसार तृष्णा रोग से पीड़ित सभी जन को।
इस लोक में "शंभव" कल्याणकारि आप हो।।

अनित्य-मत्राण-महंक्रियाभिः, प्रसक्त-मिथ्याध्यवसाय-दोषम् ।
इदं जगज्जन्म-जरान्त-कार्त्तं, निरंजनां शान्ति-मजीगम-स्त्वम् ।।२।।

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं, तृष्णामया-प्यायन-मात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तप-त्यजस्रं, तापस्तदाया-सयतीत्यवादीः।।३।।

बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतु-र्बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं, नैकान्त-दृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता।।४।।

शक्रोऽप्यशक्त-स्तव पुण्य-कीर्त्तेः, स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुत-पाद-पद्मो, ममार्य देयाःशिव-ताति-मुच्चैः।।५।।

।। इति शंभवजिनस्तोत्रम्।।

भवरोग शमक आप ही निरपेक्ष वैद्य हो।
अनाथ रुग्ण रोग शांति हेतु वैद्य ज्यों।।१।।

यह जग अनित्य त्राणरहित अहंकार से।
विपरीत अभिप्राय दोष से विलिप्त है।।
यह जन्म जरा मृत्यु से पीड़ित इसे तुमने।
अघपंक रहित शांति दिलाई प्रभो तुमने।।२।।

जग सुख सभी बिजली चमक समान क्षणिक हैं।
तृष्णा को बढ़ाने में एक मात्र हेतु हैं।।
तृष्णा की यह वृद्धि सदैव ताप को करे।
वह ताप क्लेश ही करे तुमने कहा अरे।।३।।

हे नाथ! बंध मोक्ष और इनके हेतु जो।
आत्मा बंधा व मुक्त तथा मुक्ति का फल जो।।
स्याद्वादी आपके यहाँ ही युक्त घटेगा।
एकांतवादि में न अतः आप ही शास्ता।।४।।

तव पुण्यगुण कथन में इन्द्र भी अशक्त है।
फिर मुझ सदृश अज्ञानि स्तुति कैसे करे हैं?
फिर भी तेरी भक्ती से स्तवित पदकमल प्रभो!
उत्कृष्ट सौख्य राशि मुझे दीजिए विभो!।।५।।

श्री अभिनंदनजिनस्तोत्रं

गुणाभिनन्दा-दभिनन्दनो भवान्, दयावधूं क्षान्ति-सखी-मशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोप-पत्तये, द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य-गुणेन चायुजत् ।।१।।
अचेतने तत्कृत-बन्धजेऽपि च, ममेद-मित्याभिनिवेशक-ग्रहात्।
प्रभंगुरे स्थावर-निश्चयेन च, क्षतंजगत्तत्व-मजिग्रहद् भवान् ।।२।।
क्षुदादि-दुःख-प्रतिकारतः स्थिति-र्न चेन्द्रियार्थ-प्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देह-देहिनो-रितीद-मित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ।।३।।
जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्ध-दोषतो, भया-दकार्येष्विह न प्रवर्त्तते।
इहाप्यमुत्रा-प्यनुबन्ध-दोषवित्, कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ।।४।।
स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत् तृषोऽपि वृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं, ततो भवानेवगतिः सतां मतः।।५।।

इत्यभिनन्दनजिनस्तोत्रम्

अभिनन्दन जिनस्तुति

प्रभु आप गुण की वृद्धि से अभिनन्दनं हुए।
क्षमा सखी सहित दयावधू को आश्रये।।
वरध्यान के आधीन ध्यान सिद्धि के लिए।
अंतर बहि निर्ग्रंथ गुण दोनों से युत हुए।।१।।
पुद्गल व बंधजन्य सुख-दुखादि अन्य में।
ये मेरे हैं इस मिथ्या आशय पिशाच से।।
नश्वर को थिर समझ के नष्ट हुए जगत को।
प्रभु आप सत्य तत्त्व बताया है सभी को।।२।।
क्षुध आदि प्रतीकार हेतु अशन आदि से।
अरु इन्द्रिय विषय से हुए भी अल्प सौख्य से।।
तनु और आत्मा की न स्थिति न उपकार।
प्रभु आपने इस जगत् को समझाया इस प्रकार।।३।।
मानव अती आसक्त भी आसक्तिदोष से।
नृप आदि के भय से अकार्य में न प्रवर्ते।।
द्वय भव में भी आसक्ति दोष जान भव सुख में।
आसक्त कैसे हो रहे विस्मय अहो! इसमें।।४।।
आसक्ति से तृष्णा की वृद्धि जन को तापकर।
संसार सुख न जन को कभी होते तुष्टिकर।।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ९२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. १२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर लघु चैत्यभक्ति पढ़ें)

जिस हेतु आप मत प्रभो! त्रैलोक्य हितंकर।
अत आप ही हैं सत्पुरुष के लिए शरणकर।।५।।

लघु चैत्यभक्ति (हिन्दी पद्यानुवाद)

भरत आदि क्षेत्रों में हिमवन, आदि सभी पर्वत ऊपर।
नन्दीश्वर द्वीपों में पाँचों, मेरू के अस्सी मंदिर।।
मध्यलोक में जितने भी, जिनवर के मंदिर शाश्वत हैं।
उन सबको मैं नितप्रति वंदूँ, वे भवदधि से तारक हैं।।१।।
भवनवासि व्यंतर ज्योतिष-वैमानिक देवों के गृह में।
पृथ्वीतल में कृत्रिम-अकृत्रिम जितने भी जिनगृह हैं।।
इस जग में मनुजों से निर्मित, सुरनर से पूजित मंदिर।
भावसहित उन सबको वंदूँ, स्मरण करूं मैं शिर नत कर।।२।।
जम्बूद्वीप धातकी पुष्कर-अर्ध अढाई द्वीपों में।
रत्नत्रयधर तीर्थंकर हों, इक सौ सत्तर क्षेत्रों में।।
श्वेत लाल नीले स्वर्णिम अरु, हरित वर्ण के जिनवर ये।
कर्मेंधन को भस्म किया, त्रयकालिक जिन को वंदन है।।३।।
मेरु कुलाचल रजतगिरी, जम्बू शाल्मलि तरु गिरि वक्षार।
चैत्यवृक्ष मनुजोत्तर अंजन, दधिमुख रतिकर इष्वाकार।
कुंडल रुचकाचल इन सब पर, जिनगृह भावन व्यंतर के।
ज्योतिष के स्वर्गों के जिनगृह, इन सबको प्रणमूँ रुचि से।।४।।
कुंदकुसुम शशि बर्फ हार सम, धवल चंद्रप्रभु सुविधि हैं।
इन्द्रनील सम दो जिन लाल-कमल सम दो व हरित दो हैं।।
सोलह जिनवर तपे स्वर्णसम, जन्ममृत्युहत सुरनुत हैं।
ये सज्ज्ञानसूर्य चौबिस जिन, हम सबको सिद्धी देवें।।५।।

अंचलिका —

भगवन्! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन संतोष।।

दक्षिणदिग्विदिगंतरे, केवलि-जिन-सिद्ध-साधु-गणदेवाः।
ये सर्वर्द्धि - समृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे ।।

इति दक्षिणदिक् वंदना।

अथ पश्चिमदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

श्री सुमतिजिनस्तोत्रं

अन्वर्थसंज्ञः सुमति-र्मुनिस्त्वं, स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम् ।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति, सर्वक्रिया-कारक-तत्त्वसिद्धिः।।१।।

अधो-मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।
भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ सतत।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण सम्पत् होवे।।३।।

पुनः-

दक्षिणदिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।

।।इति दक्षिणदिक् वंदना।।

अथ पश्चिमदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

श्रीसुमतिजिन स्तुति

हे सुमतिनाथ! आपका सार्थक सुनाम है।
सुयुक्ति सहित आप मत स्वयं सुमान्य है।।

अनेक-मेकं च तदेव तत्त्वं, भेदान्वय-ज्ञान-मिदं हि सत्यम् ।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे, तच्छेष-लोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्।।२।।

सतः कथंचित्-तदसत्त्व-शक्तिः, खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्वस्वभाव-च्युत-मप्रमाणं, स्ववाग्-विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्।।३।।

न सर्वथा नित्य-मुदेत्यपैति, न च क्रियाकारक-मत्र युक्तम् ।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गल-भावतोऽस्ति।।४।।

विधि-र्निषेधश्च कथंचिदिष्टौ, विवक्षया मुख्य-गुण-व्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं, मति-प्रवेकःस्तुवतोऽस्तु नाथ।।५।।

इति सुमतिजिनस्तोत्रम्

क्योंकि क्रिया व कारक जो तत्त्व कहे हैं।
सब शेष मतों में न उनकी सिद्धि हुई है।।१।।

अनेक और एकरूप वही तत्त्व है।
वह भेद तथा अन्वय ज्ञान से ही सत्य है।।
उपचार कथन मिथ्या एक का अभाव हो।
हो शेष का अभाव भी फिर तत्त्व अकथ हो।।२।।

सत् वस्तु में कथंचित् असत्त्वशक्ति है।
आकाश में कुसुम नहीं वृक्षों में दिखे हैं।।
यदि तत्त्व सब स्वभाव-शून्य अप्रमाण है।
तव मत से अन्य मत प्रभो! स्ववचविरुद्ध हैं।।३।।

जो नित्य सर्वथा न वो जन्मे न नष्ट हो।
उसमें न क्रिया कारक युक्ती से घटित हों।।
नहिं जन्म असत् का व सत् का नाश नहीं है।
दीपक बुझा तो तिमिर भी पुद्गलमयी ही है।।४।।

अस्तित्व व नास्तित्व कथंचित् ही इष्ट हैं।
वक्ता की इच्छा से ही मुख्य गौण रूप हैं।।
हे सुमतिनाथ! आपकी यह कथन पद्धती।
मुझ स्तुतिकर्ता की हो उत्कृष्टतम मती।।५।।

श्री पद्मप्रभजिनस्तोत्रं

पद्मप्रभःपद्म-पलाशलेश्यः, पद्मालया-लिंगित-चारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्य-पयोरुहाणां, पद्मा-कराणा-मिव पद्मबन्धुः।।१।।

बभार पद्मां च सरस्वतीं च, भवान्पुरस्तात्प्रति-मुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वती-मेव समग्रशोभां, सर्वज्ञ-लक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः।।२।।

शरीर-रश्मि-प्रसरः प्रभोस्ते, बालार्क-रश्मिच्छवि-रालिलेप।
नरामरा-कीर्णसभां प्रभावच्-छैलस्य पद्माभ-मणेः स्वसानुम्।।३।।

नभस्तलं पल्लव-यन्निव त्वं, सहस्रपत्राम्बुज-गर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातित-मोहदर्पो, भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै।।४।।

श्रीपद्मप्रभ सतुति

हे पद्मप्रभो! आप देह लालकमल सम।
अन्तर व बाह्य श्री से स्पर्शित आप तन।।
जैसे रवी कमल समूह को खिला रहे।
वैसे ही आप भव्यकमल को खिला रहे।।१।।

प्रभु आपने शिव से प्रथम अर्हंत दशा में।
लक्ष्मी व सरस्वती उभय के पती हुए।।
या समवसरणयुत सरस्वती को धरा।
फिर विगतकर्म उत्तम सर्वज्ञश्री वरा।।२।।

प्रातः रवी किरण सदृश छवि आपकी प्रभो!
तव देहकांति का प्रसार व्याप रहा भो।।
नरसुरगणों से सहित सभा को प्रकाशता।
जिस विध से पद्ममणी गिरि के तट को भासता।।३।।

हे नाथ! आप सहस्रदल कमल पे पग धरें।
तव पदकमल आकाश को ही पल्लवित करें।।
तुम कामदेव मद विनाश करके भूमि पे।
सब जन के विभव हेतु श्रीविहार किए थे।।४।।

गुणाम्बुधे-र्विप्रुष-मप्यजस्रं, नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक्किमुतातिभक्ति-र्मां बाल-मालापयतीद-मित्थम्।।५।।

।। इति पद्मप्रभस्तोत्रम् ।।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य और पृ. १२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ३९ से वर्षेषु वर्षान्तर.....इत्यादि चैत्यभक्ति पढ़ें।)

पश्चिम-दिग्विदिगंतरे, केवलि-जिनसिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे ।।

इति पश्चिमदिक् वंदना।

अथ उत्तरदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

तव गुणसमुद्र की हे ऋषे! एक बिन्दु की।
नहिं आज तक भी स्तुति कर सका इन्द्र भी।।
फिर मुझ सदृश कैसे भला कर सकता स्तुती?
अति भक्ति ही मुझ अज्ञ को बुलवा रही कुछ भी।।५।।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य और पृ. १२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ३९ से लघु चैत्यभक्ति पढ़ें।)

पश्चिमदिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।३।।

।।इति पश्चिमदिक् वंदना।।

अथ उत्तरदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

श्री सुपार्श्वजिनस्तोत्रम्

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिक-मेष पुंसां, स्वार्थो न भोगःपरिभंगु-रात्मा।
तृषोऽनुषंगान्न च तापशांति-रितीद-माख्यद्-भगवान् सुपार्श्वः।।१।।
अजंगमं जंगम-नेययन्त्रं, यथा तथा जीवधृतं शरीरम् ।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च, स्नेहो वृथा-त्रेति हितं त्वमाख्यः।।२।।
अलंघ्यशक्ति-र्भवितव्यतेयं, हेतुद्वया-विष्कृत-कार्यलिंगा।
अनीश्वरो जन्तु-रहं क्रियार्त्तः, संहत्य कार्ये-ष्विति साध्ववादीः।।३।।
बिभेति भृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो, नित्यं शिवं वांछति नास्य लाभः।
तथापि बालो भयकाम-वश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः।।४।।
सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता, मातेव बालस्य हिता-नुशास्ता।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता, मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य।।५।।

इति सुपार्श्वजिनस्तोत्रम्

श्री सुपार्श्वनाथ स्तुति

जीवों का है परिपूर्ण स्वास्थ्य स्व में स्थिति।
क्षणभंगुरे ये भोग नहिं निज के अर्थ ही।।
तृष्णा की वृद्धि से नहीं है ताप की शांती।
भगवन् ! सुपार्श्व आपने यह सूक्ति सिखा दी।।१।।
जिस विध से जड़ ये यंत्र सचेतन से चले हैं।
वैसे ही अचेतन शरीर जीव धरे हैं।।
यह तनु घृणित दुर्गंधि विनश्वर व तापकर।
इसमें है राग व्यर्थ ऐसा तव कथन हितकर।।२।।
ये होनहार है अलंघ्य टाले न टलती।
अन्तर व बाह्य हेतुओं से कार्य की सिद्धी।।
असमर्थ भी ये जीव अहंकार से ग्रसित।
सहकारि से ही कार्य न हों प्रभु कथन उचित।।३।।
यह जीव मृत्यु से डरे फिर भी नहीं मुक्ती।
नित मोक्ष की वांछा करे फिर भी न हो प्राप्ती।।
फिर भी ये अज्ञ जीव भय व कामवश हुआ।
स्वयमेव व्यर्थ है दुःखी प्रभु तुमने यह कहा।।४।।
प्रभु आप सब पदार्थ के ज्ञाता प्रसिद्ध हैं।
बालक के लिए हितकथन में मातु सदृश हैं।।

श्री चंद्रप्रभजिनस्तोत्रम्

चन्द्रप्रभं चन्द्र-मरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महता-मृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्त-कषायबन्धम्।।१।।

यस्यांग-लक्ष्मी-परिवेश-भिन्नं, तमस्तमोरे-रिव रश्मि-भिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च, ध्यान-प्रदीपातिशयेन भिन्नम् ।।२।।

स्वपक्षसौस्थित्य-मदावलिप्ता, वाक्सिंहनादै-र्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्र-गण्डा, गजा यथा केशरिणो निनादैः।।३।।

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं वभूवाद्भुतकर्मतेजाः।
अनन्त-धामाक्षर-विश्वचक्षुः, समंत-दुःखक्षय-शासनश्च।।४।।

गुण खोजने वालों के नेता आप ही यहाँ।
प्रभु आज मैं भी तव स्तव भक्ती से कर रहा।।५।।

चन्द्रप्रभ स्तुति

हे चंद्रप्रभो! चन्द्रकिरण सम सफेद हो।
मानो द्वितीय चंद्र ही भूपर उदित अहो।।
इंद्रादि वंद्य ऋषिपती जिनराज आप हो।
अंतःकषायबंधविजित मैं तुम्हें वंदों।।१।।
जैसे रवी किरण अंधेर नष्ट करे हैं।
तव देह कांति वैसे सुप्रकाश धरे हैं।।
यह कांति बाह्य के समस्त तिमिर को नाशे।
अरु ध्यानदीप अतिशय मन ध्वांत विनाशे।।२।।
निजपक्ष के श्रेष्ठत्व मद से चूर प्रवादी।
तुम वचन सिंहनाद से निर्मद हुए सभी।।
जैसे कि मद से आर्द्र गंडस्थल हुए जिनके।
गजराज वे भी सिंहगर्जना से भागते।।३।।
जो कर्मजीत अद्भुत कर्म तेज धारते।
आनन्त्यज्ञान शाश्वत विश्वनेत्र धारते।।
संपूर्णदुःखनाशन शासन को धरे हैं।
त्रिभुवन में परमपद में वो स्थिति करे हैं।।४।।

स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाभ्र-कलंकलेपः।
व्याकोश-वाङ्न्याय-मयूख-मालः, पूयात् पवित्रो भगवान्मनो मे।।५।।

इति चन्द्रप्रभजिनस्तोत्रम्

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. १२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर चैत्यभक्ति पढ़ें।)

उत्तरदिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।

इति उत्तरदिक्वंदना

(यहाँ तक चतुर्दिक्वंदना पूर्ण हुई है।)

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. १२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पंचमहागुरुभक्ति पढ़ें।)

सब दोषरूप मेघ के कलंक से रहित।
अविरोध दिव्यध्वनी किरण से सदा प्रगट।।
सब भव्य कुमुद को प्रफुल्ल करें चन्द्रमा।
भगवान वे पावन पवित्र करें मुझ मना।।५।।

इति चन्द्रप्रभजिनस्तोत्रम्

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. १२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर चैत्यभक्ति पढ़ें।)

उत्तरदिग्विदिगंतरे, केवलिजिन-सिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धि-समृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।

इति उत्तरदिक् वंदना

(यहाँ तक चतुर्दिक्वंदना पूर्ण हुई।)

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. १२ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पंचमहागुरुभक्ति पढ़ें।)

पंचमहागुरु भक्तिः

श्रीमद-मरेन्द्रमुकुट-प्रघटित-मणिकिरण-वारिधाराभिः।
प्रक्षालित-पदयुगलान्-प्रणमामि जिनेश्वरान्-भक्त्या।।१।।

अष्टगुणैः समुपेतान्, प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन्।
सिद्धान्-सतत-मनन्तान्, नमस्करो-मीष्टतुष्टि-संसिद्ध्यै।।२।।

साचार-श्रुतजलधीन्, प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग-कमलानि दधे शिरसि मेऽहम्।।३।।

मिथ्यावादि-मदोग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसि-वचनसंदर्भान्।
उपदेशकान्प्रपद्ये, मम दुरितारि - प्रणाशाय।।४।।

सम्यग्दर्शनदीप - प्रकाशकामेय - बोधसंभूताः।
भूरिचरित्रपताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु।।५।।

जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधुवरा-नमलगुण-गणोपेतान्।
पंचनमस्कारपदैस्त्रिसंध्य-मभिनौमि मोक्षलाभाय।।६।।

पंचमहागुरु भक्ति

श्रीमन् इंद्रों के मुकुटों की, मणिप्रभा जलधारा से।
प्रक्षालित पदयुगल जिनेश्वर, को प्रणमूँ नित भक्ती से।।१।।

दुष्ट अष्टविध कर्म शत्रुगण, नाशक अष्ट गुणों से युत।
नमूँ अनंतों सिद्धों को नित, इष्ट तुष्टि सिद्धी हेतु।।२।।

द्वादशांग श्रुतजलधि पार कर , शुद्ध महान चरित में रत।
आचार्यों के पदयुग कमलों, को निज शिर पर धारूँ नित।।३।।

मिथ्यावादी के मद तम, विध्वंसी वचन सहित पाठक।
निज दुरितारि प्रणाशन हेतू, शरण लिया तव उपदेशक।।४।।

सम्यग्दर्शन दीप प्रकाशी, ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान उदय।
भूरि चरित ध्वजयुत वे मेरी, रक्षा करें साधुगण सब।।५।।

जिनवर सिद्ध सूरि पाठक सब, साधु अमल गुणगण से युत।
पंचनमस्कृति मंत्र पदों से, त्रिसमय नमूँ मोक्षपद हेतु।।६।।

एष पंचनमस्कारः, सर्वपापप्रणाशनः।
मंगलानां च सर्वेषां, प्रथमं मंगलं मतं।।७।।

अर्हत्सिद्धाचार्यो - पाध्यायाः सर्वसाधवः।
वुर्वन्तु मंगलाः सर्वे, निर्वाण-परमाश्रियम् ।।८।।

सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान्-सिद्धानाचार्यपाठकान् साधून्।
रत्नत्रयं च वन्दे, रत्नत्रय - सिद्धये भक्त्या।।९।।

पान्तु श्रीपादपद्मानि, पंचानां परमेष्ठिनां।
लालितानि सुराधीश - चूड़ामणि - मरीचिभिः।।१०।।

प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान्, गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगांगै-रष्टभिः स्तुवे।।११।।

आलोचना —**इच्छामि भंते! पंचमहागुरुभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अट्ठमहापाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं। अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि**

पंचनमस्कृति महामंत्र यह, सर्व पाप नाशनकारी।
सभी मंगलों में यह उत्तम, मंगल प्रथम सौख्यकारी।।७।।
अर्हंत्सिद्धाचार्य उपाध्याय सर्व साधु परमेष्ठी पांच।
मुझको दें निर्वाण परमश्री, वे मंगलमय मंगल काज।।८।।
सभी जिनेन्द्र चंद्र सिद्धों को, सूरी पाठक साधू को।
रत्नत्रय की सिद्धी हेतू नित वंदूं रत्नत्रय को।।९।।
सुरपति के चूड़ामणि किरणों, से चुंबित श्री पादकमल।
श्रेष्ठ पंच परमेष्ठी के वे, रक्षा करें मेरी प्रतिपल।।१०।।
प्रातिहार्य से युत अर्हन्तों, को अठ गुणयुत सिद्धों को।
वंदूं अठ प्रवचन माता से, संयुत श्री आचार्यों को।।११।।
शिष्यों से युत पाठकगण को, अष्ट योगयुत साधू को।
वंदूं पंच महागुरुवर को, त्रिकरण शुचि से हर्षित हो।।१२।।

अंचलिका

दोहा-

भगवन् ! पंचमहागुरु, भक्ति कायोत्सर्ग।
करके आलोचन विधि, करना चाहूँ सर्व।।१।।
अष्ट महाशुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हन्त जिनेश्वर हैं।
अष्ट गुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराज रहे।।२।।

पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण-माउसंजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादि-सुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर शांतिभक्ति पढ़ें।)

शांतिभक्ति

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् ! पादद्वयं ते प्रजाः।
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः, संसारघोरार्णवः।।
अत्यन्तस्फुरदुग्ररश्मिनिकर-व्याकीर्णभूमण्डलो।
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिल-च्छायानुरागं रविः।।१।।

अठ प्रवचन माता संयुत हैं, श्री आचार्यप्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत, उपदेशी पाठकगण हैं।।३।।

रत्नत्रयगुण पालन में रत, सर्वसाधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूँ वंदूँ, नमस्कार मैं करूँ उन्हें।।४।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपद् होवे।।५।।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर शांतिभक्ति पढ़ें।)

शांतिभक्ति

(हिन्दी पद्यानुवाद)

भगवन् ! सब जन तव पद युग की, शरण प्रेम से नहिं आते।
उसमें हेतु विविध दुःखों से, भरित घोर भववारिधि हैं।।
अतिस्फुरित उग्र किरणों से, व्याप्त किया भूमण्डल है।
ग्रीषम ऋतु रवि राग कराता, इंदुकिरण छाया-जल में।।१।।

क्रुद्धाशीर्विषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो।
विद्याभेषजमन्त्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा।।
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुग-स्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्।
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा, शाम्यन्त्यहो! विस्मयः।।२।।

संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते।
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्, पीडाः प्रयान्ति क्षयं।।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता।
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा, शीघ्रं यथा शर्वरी।।३।।

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यन्तरौद्रात्मकान् ।
नानाजन्मशतान्तरेषु पुरतो, जीवस्य संसारिणः।।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना, कालोग्रदावानला-
न्नस्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगावारणम्।।४।।

लोकालोकनिरन्तरप्रविततज्ञानैकमूर्ते! विभो!।
नानारत्नपिनद्धदंडरुचिरश्वेतातपत्रत्रय! ।।

कुद्धसर्प आशीविष डसने, से विषाग्नियुत मानव जो।
विद्या औषध मंत्रित जल, हवनादिक से विष शांति हो।।
वैसे तव चरणाम्बुज युग-स्तोत्र पढ़ें जो मनुज अहो।
तनु नाशक सब विघ्न शीघ्र, अति शांत हुए आश्चर्य अहो।।२।।

तपे श्रेष्ठ कनकाचल की, शोभा से अधिक कांतियुत देव।
तव पद प्रणमन करते जो, पीड़ा उनकी क्षय हो स्वयमेव।।
उदित रवी की स्फुट किरणों से, ताड़ित हो झट निकल भगे।
जैसे नाना प्राणी लोचन-द्युतिहर रात्री शीघ्र भगे।।३।।

त्रिभुवन जन सब जीत विजयि बन, अतिरौद्रात्मक मृत्युराज।
भव भव में संसारी जन के, सन्मुख धावे अति विकराल।।
किस विध कौन बचे जन इससे, काल उग्र दावानल से।
यदि तव पाद कमल की स्तुति-नदी बुझावे नहीं उसे।।४।।

लोकालोक निरन्तर व्यापी, ज्ञानमूर्तिमय शान्ति विभो।
नानारत्न जटित दण्डेयुत, रुचिर श्वेत छत्रत्रय हैं।।

त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः।
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः।।५।।

दिव्यस्त्रीनयनाभिराम! विपुलश्रीमेरुचूडामणे!
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामंडल!।।
अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं, त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते।।६।।

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः, श्रीभास्करो भासयं-
स्तावद्-धारयतीह पंकजवनं, निद्रातिभारश्रमम् ।।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदय-
स्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्।।७।।

शांतिं शान्तिजिनेन्द्र! शांतमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्।
संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शांत्यर्थिनः प्राणिनः।।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शांत्यष्टकं भक्तितः।।८।।

तव चरणाम्बुज पूतगीत रव, से झट रोग पलायित हैं।
जैसे सिंह भयंकर गर्जन, सुन वन हस्ती भगते हैं।।५।।

दिव्यस्त्रीदृगसुन्दर विपुला, श्रीमेरु के चूड़ामणि।
तव भामण्डल बाल दिवाकर, द्युतिहर सबको इष्ट अति।।
अव्याबाध अचिंत्य अतुल, अनुपम शाश्वत जो सौख्य महान्।
तव चरणारविंदयुगलस्तुति, से ही हो वह प्राप्त निधान।।६।।

किरण प्रभायुत भास्कर भासित, करता उदित न हो जब तक।
पंकजवन नहिं खिलते, निद्राभार धारते हैं तब तक।।
भगवन् ! तव चरणद्वय का हो, नहीं प्रसादोदय जब तक।
सभी जीवगण प्रायः करके, महत् पाप धारें तब तक।।७।।

शांति जिनेश्वर शांतचित्त से, शांत्यर्थी बहु प्राणीगण।
तव पादाम्बुज का आश्रय ले, शांत हुए हैं पृथिवी पर।।
तव पदयुग की शांत्यष्टकयुत, संस्तुति करते भक्ती से।
मुझ भाक्तिक पर दृष्टि प्रसन्न, करो भगवन् ! करुणा करके।।८।।

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम्।।९।।

पंचममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिंद्र-नरेन्द्रगणैश्च।
शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थंकरं प्रणमामि।।१०।।

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे, यस्य विभाति च मंडलतेजः।।११।।

तं जगदर्चितशांतिजिनेन्द्रं, शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं, मह्यमरं पठते परमां च।।१२।।

येभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः।
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः।।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपाः।
तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु।।१३।।

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।१४।।

शशि सम निर्मल वक्त्र शांतिजिन, शीलगुण व्रत संयम पात्र।
नमूँ जिनोत्तम अंबुजदृग को, अष्टशतार्चित लक्षण गात्र।।९।।

चक्रधरों में पंचमचक्री, इन्द्र नरेन्द्र वृंद पूजित।
गण की शांति चहूँ षोडश-तीर्थंकर नमूँ शांतिकर नित।।१०।।

तरुअशोक सुरपुष्पवृष्टि, दुंदुभि दिव्यध्वनि सिंहासन।
चमर छत्र भामण्डल ये अठ, प्रातिहार्य प्रभु के मनहर।।११।।

उन भुवनार्चित शांतिकरं, शिर से प्रणमूँ शांति प्रभु को।
शांति करो सब गण को मुझको, पढ़ने वालों को भी हो।।१२।।

मुकुटहारकुंडल रत्नों युत, इन्द्रगणों से जो अर्चित।
इन्द्रादिक से सुरगण से भी, पादपद्म जिनके संस्तुत।।
प्रवरवंश में जन्मे जग के, दीपक वे जिन तीर्थंकर।
मुझको सतत शांतिकर होवें, वे तीर्थेश्वर शांतिकर।।१३।।

संपूजक प्रतिपालक जन, यतिवर सामान्य तपोधन को।
देश राष्ट्र पुर नृप के हेतू, हे भगवन् ! तुम शांति करो।।१४।।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं।।
दुर्भिक्षं चोरिमारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्वसौख्यप्रदायि।।१५।।

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः, संतन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण, रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे।।१६।।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शांतिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः।।१७।।

अंचलिका —इच्छामि भंते! संतिभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीसाति-सयविशेषसंजुत्ताणं, बत्तीसदेवेंदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं, बलदेववा-सुदेवचक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं, थुइसयसहस्साणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि,

---

सभी प्रजा में क्षेम नृपति, धार्मिक बलवान् जगत में हो।
समय-समय पर मेघवृष्टि हो, आधि व्याधि का भी क्षय हो।।
चोरि मारि दुर्भिक्ष न क्षण भी, जग में जन पीड़ाकर हो।
नित ही सर्व सौख्यप्रद जिनवर, धर्मचक्र जयशील रहो।।१५।।

वे शुभद्रव्य क्षेत्र अरु काल, भाव वर्तें नित वृद्धि करें।
जिनके अनुग्रह सहित मुमुक्षु, रत्नत्रय को पूर्ण करें।।१६।।

घातिकर्म विध्वंसक जिनवर, केवलज्ञानमयी भास्कर।
करें जगत में शांति सदा, वृषभादि जिनेश्वर तीर्थंकर।।१७।।

अंचलिका–

हे भगवन् ! श्री शांतिभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसके।
आलोचन करने की इच्छा, करना चाहूँ मैं रुचि से।।
अष्टमहाप्रातिहार्य सहित जो, पंचमहाकल्याणक युत।
चौंतिस अतिशय विशेष युत, बत्तिस देवेन्द्र मुकुट चर्चित।।
हलधर वासुदेव प्रतिचक्री, ऋषि मुनि यति अनगार सहित।
लाखों स्तुति के निलय वृषभ से, वीर प्रभू तक महापुरुष।।

णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्ध-योगि-चैत्य-पंचमहागुरुशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. १२ से थोस्सामि पढ़कर समाधिभक्ति पढ़ें।)

समाधि भक्तिः

स्वात्माभिमुखसंवित्तिलक्षणं श्रुतचक्षुषा।
पश्यन्पश्यामि देव त्वां, केवलज्ञानचक्षुषा।।१।।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम् ।।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यंतां मम भवभवे, यावदेतेऽपवर्गः।।२।।

मंगल महापुरुष तीर्थंकर, उन सबको शुभ भक्ति से।
नित्यकाल मैं अर्चूं, पूजूं, वंदू, नमूं महामुद से।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्ध-योगि-चैत्य-पंचमहागुरुशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. १२ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. १२ से थोस्सामि पढ़कर समाधिभक्ति पढ़ें।)

समाधिभक्ति

स्वात्मरूप के अभिमुख, संवेदन को श्रुतदृग् से लखकर।
भगवन् ! तुमको केवलज्ञान, चक्षु से देखूँ झट मनहर।।१।।

शास्त्रों का अभ्यास जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्रजन के गुण गाऊँ, दोष कथन में मौन सतत।।
सबसे प्रिय हित वचन कहूँ, निज आत्म तत्त्व को नित भाऊँ।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव-भव में इन सबको पाऊँ।।२।।

जैनमार्गरुचिरन्यमार्गनिर्वेगता जिनगुणस्तुतौ मतिः।
निष्कलंकविमलोक्तिभावनाः, सम्भवन्तु मम जन्मजन्मनि।।३।।

गुरुमूले यतिनिचिते, चैत्यसिद्धांतवार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि, सन्यसन समन्वितं मरणम्।।४।।

जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिसमार्जितम् ।
जन्ममृत्युजरामूलं, हन्यते जिनवंदनात् ।।५।।

आबाल्याज्जिनदेवदेव! भवतः श्रीपादयोःसेवया।
सेवासक्तविनेयकल्पलतया कालोद्ययावद्गतः।।
त्वां तस्याः फलमर्थये, तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे।
त्वन्नामप्रतिबद्धवर्णपठने, कंठोस्त्वकुंठो मम।।६।।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः।।७।।

एकापि समर्थेयं, जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः।।८।।

जैनमार्ग में रुचि हो अन्य, मार्ग निर्वेग हों भव-भव में।
निष्कलंक शुचि विमल भाव हों, मति हो जिनगुण स्तुति में।।३।।

गुरुपदमूल में यतिगण हों, अरु चैत्यनिकट आगम उद्घोष।
होवे जन्म-जन्म में मम, संन्यासमरण यह भाव जिनेश।।४।।

जन्म-जन्म कृत पाप महत अरु, जन्म करोड़ों में अर्जित।
जन्म-जरा-मृत्यू के जड़ वे, जिन वंदन से होते नष्ट।।५।।

बचपन से अब तक जिनदेवदेव! तव पाद कमल युग की।
सेवा कल्पलता सम मैंने, की है भक्तिभाव धर ही।।
अब उसका फल माँगूँ भगवन् ! प्राण प्रयाण समय मेरे।
तव शुभ नाम मंत्र पढ़ने में, कंठ अकुंठित बना रहे।।६।।

तव चरणाम्बुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरणयुग में।
तावत् रहे जिनेश्वर! यावत्, मोक्षप्राप्ति नहिं हो जग में।।७।।

जिनभक्ती ही एक अकेली, दुर्गति वारण में समरथ।
जन का पुण्य पूर्णकर मुक्ति-श्री को देने में समरथ।।८।।

पंच अरिंजयणामे, पंचय मदिसायरे जिणे वंदे।
पंच जसोयरणामे, पंचय सीमंदरे वंदे[९]।।९।।

रयणत्तयं च वंदे, चउवीसजिणे च सव्वदा वंदे।
पंचगुरूणां वंदे, चारणचरणं सदा वंदे।।१०।।

अर्हमित्यक्षरब्रह्म - वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे।।११।।

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।१२।।

आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते, मुक्तिश्रियो वश्यतां।
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां, विद्वैषमात्मैनसाम्।।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो, मोहस्य सम्मोहनम्।
पायात्पंचनमस्क्रियाक्षरमयी, साराधना देवता।।१३।।

अनंतानन्तसंसार - संततिच्छेदकारणम् ।
जिनराजपदाम्भोज - स्मरणं शरणं मम।।१४।।

पंच अरिंजय नाम पंच-मतिसागर जिन को वंदूँ मैं।
पंच यशोधर नमूँ पंच-सीमंधर जिन को वंदूँ मैं।।९।।

रत्नत्रय को वंदूँ नित, चउवीस जिनवर को वंदूँ मैं।
पंचपरमगुरु को वंदूँ, नित चारण चरण को वंदूँ मैं।।१०।।

"अर्हं" यह अक्षर है ब्रह्मरूप, पंचपरमेष्ठी का वाचक।
सिद्धचक्र का सही बीज है, उसको नमन करूँ मैं नित।।११।।

अष्टकर्म से रहित मोक्ष-लक्ष्मी के मंदिर सिद्ध समूह।
सम्यक्त्वादि गुणों से युत, श्रीसिद्धचक्र को सदा नमूँ।।१२।।

सुरसंपति आकर्षण करता, मुक्तिश्री को वशीकरण।
चतुर्गति विपदा उच्चाटन, आत्म-पाप में द्वेष करण।।
दुर्गति जाने वाले का, स्तंभन मोह का सम्मोहन।
पंचनमस्कृति अक्षरमय, आराधन देव! करो रक्षण।।१३।।

अहो अनंतानंत भवों की, संतति का छेदन कारण।
श्री जिनराज पदाम्बुज है, स्मरण करूँ मम वही शरण।।१४।।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर!।।१५।।

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।१६।।

जिने भक्ति-र्जिने भक्ति-र्जिने भक्ति-र्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे।।१७।।

याचेऽहं याचेऽहं जिन! तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।
याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव।।१८।।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषो निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।१९।।

इच्छामि भंते! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं रयणत्तयसरूव-परमप्पज्झाणलक्खण समाहिभत्तीये णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि,

---

अन्य प्रकार शरण नहिं जग में, तुम ही एक शरण मेरे।
अतः जिनेश्वर करुणा करके, रक्ष मेरी रक्षा करिये।।१५।।

त्रिभुवन में नहिं त्राता कोई, नहिं त्राता है नहिं त्राता।
वीतराग प्रभु छोड़ न कोई, हुआ न होता नहिं होगा।।१६।।

जिन में भक्ती सदा रहे, दिन-दिन जिनभक्ती सदा रहे।
जिन में भक्ती सदा रहे, मम भव-भव में भी सदा रहे।।१७।।

तव चरणाम्बुज की भक्ती को, जिन! मैं याचूँ मैं याचूँ।
पुनः पुनः उस ही भक्ति की, हे प्रभु! याचन करता हूँ।।१८।।

विघ्नसमूह प्रलय हो जाते, शाकिनि भूत पिशाच सभी।
श्री जिनस्तव करने से ही, विष निर्विष होता झट ही।।१९।।

दोहा-

भगवन् ! समाधिभक्ति अरु, कायोत्सर्ग कर लेत।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेत।।१।।

रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ उसे।।

णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

।। वर्षायोग स्थापना विधि पूर्ण हुई ।।

****

वार्षिक प्रतिक्रमण

अनगार[१] धर्मामृत में कहा है—एतेन वृहत्प्रतिक्रमणाः सप्त भवन्तीत्युक्तं भवति। ताश्च यथा-व्रतारोपणी, पाक्षिकी कार्तिकान्तचातुर्मासी फाल्गुनान्तचातुर्मासी, आषाढान्त-सांवत्सरी सार्वातिचारी उत्तमार्थी चेति।

अर्थात् आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी या पूर्णिमा को साधु वार्षिक प्रतिक्रमण करते हैं तथा प्रत्येक पक्ष में चतुर्दशी, अमावस्या या पूर्णिमा को पाक्षिक प्रतिक्रमण करते हैं। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी या अमावस्या को भी पाक्षिक प्रतिक्रमण होता है पुनः कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी या पूर्णिमा को चातुर्मासिक प्रतिक्रमण होता है। ऐसे ही फाल्गुन के अंत में चतुर्दशी या पूर्णिमा को चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया जाता है। अर्थात् पन्द्रह दिन के दोषों के शोधन हेतु पाक्षिक, चार महीने के दोष विशोधन हेतु चातुर्मासिक और वर्ष भर के दोषों की शुद्धि हेतु वार्षिक प्रतिक्रमण किये जाते हैं।

वर्षायोग निष्ठापना कब और कैसे करें?

''ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां पश्चाद् रात्रौ च मुच्यताम्।।''

''कार्तिकस्य कृष्ण चतुर्दशीतिथौ'' अर्थात् कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में वर्षायोग को निष्ठापित कर देवें।

वर्षायोग निष्ठापन क्रिया

वर्षायोग प्रतिष्ठापना में जो-जो भक्तियाँ पढ़ी जाती हैं वे ही सारी भक्तियाँ यहाँ भी पढ़ी जाती हैं अन्तर इतना ही है कि 'प्रतिष्ठापन' के स्थान पर 'निष्ठापन' बोलें। यथा-

नमोऽस्तु वर्षायोगनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

ऐसे ही वर्षायोगप्रतिष्ठापन की पूरी क्रिया करनी चाहिए।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।

---

१. अष्टम अध्याय

वर्षायोग कितने दिनों का है?

आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के दिन वर्षायोग प्रतिष्ठापना करके यद्यपि कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में समापन कर देते हैं फिर भी साधुओं को ''शुक्लोर्जपंचमीं यावत्'' कार्तिक शुक्ला पंचमी के पहले विहार नहीं करना चाहिए। यदि कदाचित् किसी विशेष कारणवश-दुर्निवार उपसर्गादि के निमित्त से वर्षायोग—चातुर्मास के मध्य उस गाँव से विहार करना पड़ जावे तो गुरु से प्रायश्चित लेनाचाहिए।

ऐसे ही आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की पूर्वरात्रि में कदाचित् वर्षायोग स्थापना न कर सकें तो ''नभश्चतुर्थीं न लंघयेत् '' श्रावण कृष्णा चतुर्थी को भी कर सकते हैं इसके बाद नहीं। अथवा चतुर्थी के स्थान पर पहुँचकर पंचमी को भी वर्षायोग स्थापना कर सकते हैं।

चातुर्मास के पहले और अनन्तर भी एक-एक माह अधिक उस चातुर्मास स्थान पर रह सकते हैं, ऐसा कथन है।

****

आचार्य श्री पुष्पदंत और भूतबली महामुनि ने श्रावण कृष्णा पंचमी को वर्षायोग स्थापना क्यों की थी ?

सौराष्ट्र देश में गिरिनगरपुर के निकट ऊर्जयंतगिरि प्रसिद्ध है जो कि भगवान नेमिनाथ की निर्वाणभूमि है। उस पर्वत की चंद्रगुफा में निवास करने वाले महातपस्वी परममुनियों में श्रेष्ठ धरसेनाचार्य हुए हैं। वे अग्रायणीय नामक दूसरे पूर्व की पंचम वस्तु के महाकर्म प्रकृति प्राभृत नामक चतुर्थ अधिकार के ज्ञाता थे। उन्होंने अपनी आयु को अल्प जानकर मन में विचार किया कि मैंने जितने भी श्रुत का अध्ययन किया है मेरे अनंतर इसका व्युच्छेद न हो जाए, ऐसा कुछ उपाय करना चाहिए। देशेन्द्र नामक देश में एक वेणाकतटीपुर है। उस समय वहाँ महामहिमा महान् महोत्सव के प्रसंग में मुनियों का संघ एकत्रित हुआ था। आचार्यवर्य श्री धरसेन ने एक ब्रह्मचारी के द्वारा उन मुनियों के पास एक पत्र भेजा।

उन मुनियों ने ब्रह्मचारी द्वारा प्रदत्त पत्र को पढ़ा। उसमें लिखा था कि ''स्वस्तिश्रीमान् ऊर्जयंत तट निकट चंद्र गुफावास से धरसेनगणी वेणाकतट में आए हुए यतियों की अभिवंदना करके यह कार्य सूचित करते हैं कि मेरी आयु अब कुछ दिनों की अवशिष्ट है इसलिए मेरे द्वारा गृहीत शास्त्र ज्ञान का विच्छेद न हो जाए इसलिए आप मेरे श्रुत को ग्रहण और धारण करने में समर्थ तीक्ष्ण बुद्धि वाले दो मुनीश्वरों को हमारे पास भेज दो।'' इस लेख के अर्थ को अच्छी तरह समझकर इस संघ के आचार्य ने भी सुयोग्य दो मुनियों को उनके पास जाने की आज्ञा दे दी।

वहाँ से दो मुनिराज विहार करते हुए आ रहे हैं। इधर रात्रि के पिछले प्रहर में श्री धरसेनाचार्य ने स्वप्न देखा कि श्वेतवर्ण वाले सुन्दर सुडौल दो बैल मेरे चरणों में नमस्कार कर रहे हैं और उसी दिन ही ये दो शिष्य गुरू के चरणकमल के निकट पहुँचकर यथोचित वंदना विधि करते हैं। शास्त्रोक्त विधि से तीन दिन विश्राम करके ये

गुरू से अपने आने का हेतु निवेदित करते हैं। गुरुदेव ने यद्यपि इन्हें योग्य समझ लिया था फिर भी उनकी बुद्धि की परीक्षा हेतु दोनों को एक-एक विद्या देकर कहा कि नेमीश्वर जिनराज की सिद्धशिला पर जाकर विधिवत् इस विद्या को सिद्ध करके लाओ। गुरू की आज्ञा से उन दोनों मुनियों ने वैसा ही किया। विद्या सिद्ध होते ही एक मुनि के सामने कानी देवी आकर खड़ी हो गयी और दूसरे मुनि के सामने बड़े दांतों वाली देवी आ गई, ऐसा देखकर उन मुनियों ने सोचा कि देवियों का यह स्वरूप नहीं है अतः मंत्र में कुछ अशुद्धि अवश्य है पुनः उन्होंने विद्या और मंत्रशास्त्र के व्याकरण के अनुसार मंत्र को शुद्ध किया जिनके सामने कानी देवी आई थी उनके मंत्र में एक अक्षर कम था और दूसरे मुनि के मंत्र में एक अक्षर अधिक था। दोनों ने अपने-अपने मंत्रों को शुद्ध करके पुनः विद्या सिद्ध की, तब देवियाँ सुन्दर रूप में प्रकट होकर बोलीं— भगवन्! हमें क्या आज्ञा है?

मुनियों ने कहा— हमने केवल गुरू की आज्ञा से विद्या सिद्ध की है अतः हमें कुछ कार्य आपसे नहीं है। वे देवियाँ नमस्कार करके अपने-अपने स्थान चली गयीं। दोनों मुनियों ने आकर गुरुदेव से सारी बातें बता दीं। गुरू ने उन्हें अतियोग्य समझकर सुप्रशस्त मुहूर्त में उन्हें श्रुत का अध्ययन कराना शुरू कर दिया। उन मुनियों ने भी निष्प्रमादी होकर ज्ञानविनय और गुरूविनय को करते हुए थोड़े ही दिनों में गुरू के श्रुत को पढ़ लिया, वह दिन आषाढ़ सुदी एकादशी का था। उसी दिन देवों ने आकर इन दोनों मुनियों की पूजा की और एक मुनि की दांतों की विषम पंक्तियों को ठीक करके कुंदपुष्प के समान कर दिया और उनका 'पुष्पदंत' ऐसा नाम रख दिया तथा दूसरे मुनि की भूतजाति के देवों ने गंध, माला, धूप आदि से और वाद्य विशेषों से पूजा करके उनका 'भूतबलि' यह नाम प्रसिद्ध कर दिया।

श्रीधरसेनाचार्य ने अपनी मृत्यु निकट जानकर और इन्हें संक्लेश न हो, इस हेतु से प्रियहित वचनों से उन्हें शिक्षा देकर दूसरे ही दिन अर्थात् आषाढ़ सुदी द्वादशी को वहाँ से कुरीश्वर देश की तरफ विहार करा दिया। उन मुनिराज ने नव दिन में वहाँ पत्तन में आकर के आषाढ़ कृष्णा[1] पंचमी के (श्रावण कृष्णा पंचमी) वर्षायोग ग्रहण कर लिया। वर्षाकाल बिताकर वे दोनों दक्षिण की तरफ विहार कर गये[2]। पुष्पदंत मुनिराज ने करहाटक देश में

१. दक्षिण देश में प्रत्येक मास का शुक्ल पक्ष पहले होता है फिर कृष्ण पक्ष होता है। जैसे कि यहां पर आषाढ़ सुदी के बाद आषाढ़ वदी ली गयी हैं। किन्तु उत्तर में कृष्ण पक्ष के अनंतर शुक्ल पक्ष आता है अतः आषाढ़ सुदी के पहले पक्ष को ही आषाढ़ वदी कहते हैं। यह सौरमास और चांद्रमास की व्यवस्था है।

२. स्वासन्न मृतिं ज्ञात्वा.... तौ अपि नवमिर्दिवसैर्गत्वां तत्पत्तनमवाप्य।
योगं प्रगृह्य तत्राषाढ़े ?मास्यसितिपक्षपंचम्यां। वर्षाकालं कृत्वा विहरंतौ दक्षणाभिमुखम्।।१३१।।
(श्रुतावतार)

'जिनपालित' नामक अपने भानजे को घर से निकालकर दीक्षा देकर उन्हें साथ ले लिया।

भूतबलि मुनिराज तो मथुरा में रहे और पुष्पदंत मुनिराज ने भी छह खंडों में कर्म प्रकृति प्राभृत ग्रंथ को बनाने की इच्छा रखते हुए जिनपालित नामक मुनि को पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। बीस प्ररूपणा सूत्र ग्रन्थ को बनाते हुए उन्होंने सबसे प्रथम सत्प्ररूपणा से युक्त 'जीवस्थान' नामक अधिकार को बनाया। उन संबंधी सौ सूत्रों का अध्ययन कराकर जिनपालित मुनि को भूतबलि गुरू के पास उनके अभिप्राय को समझने हेतु भेज दिया। भूतबलि महामुनि ने भी जिनपालित द्वारा पठित सत्प्ररूपणा को सुनकर अतीव हर्ष व्यक्त किया और साथ ही साथ पुष्पदंत मुनिराज का षट्खंडागम ग्रन्थ रचना का अभिप्राय भी समझ लिया तथा पुष्पदंत मुनिराज की भी अल्प आयु जानकर और आगे के मनुष्यों को अल्प बुद्धि वाले समझकर उन्होंने पूर्वसूत्रों सहित द्रव्य प्ररूपणा आदि अधिकारों को पाँच खंडों में एवं महाबंध नामक अधिकार को छठे खंड में रचकर तैयार किया।

इस प्रकार भूतबलि आचार्य ने षट्खंडागम की रचना करके और उसे लिपिबद्ध करके ज्येष्ठ सुदी पंचमी के दिन चतुर्विध संघ सहित उस ग्रंथराज की महापूजा विधि की। उसी समय से आज तक यह तिथि श्रुतपंचमी के नाम से प्रख्यात हो गई। आज भी जैन लोग श्रुतपंचमी के दिन षट्खंडागम ग्रंथराज की और समस्त उपलब्ध श्रुत की पूजा करके अपने जीवन को कृतार्थ कर लेते हैं।

तात्पर्य यह है कि इन पुष्पदंत और भूतबलि नामक महामुनियों ने गुरू श्रीधरसेनाचार्य की आज्ञानुसार श्रावण कृष्णा पंचमी को चातुर्मास स्थापित किया था।

जिनकल्पी मुनि का चातुर्मास

आगम में मुनि के सामान्यतया दो भेद किए हैं— जिनकल्पी और स्थविरकल्पी। उसमें से पहले आप जिनकल्पी मुनि की चर्या देखिए—

"ये जिनकल्पी मुनि उत्तम संहननधारी होते हैं, यदि जिनकल्पी मुनियों के पैर में कांटा लग जाए अथवा नेत्रों में धूलि पड़ जावे तो वे महामुनि अपने हाथ से न तो कांटा निकालते हैं और न धूलि ही निकालते हैं। यदि अन्य कोई दूसरा मनुष्य उस कांटे या धूलि को निकालता है तो वे मौन रहते हैं। जब वर्षाऋतु आ जाती है और मुनियों का गमन करना बंद हो जाता है उस समय वे जिनकल्पी महामुनि छह महीने तक निराहार रहते हैं और छह महीने तक कायोत्सर्ग धारण कर किसी एक ही स्थान पर खड़े रहते हैं अर्थात् उनका उत्तम संहनन होता है। अस्थि आदि सब वज्रमय होती हैं इसीलिए उनमें इतनी शक्ति होती है। वे महामुनि ग्यारह अंग के पाठी होते हैं, धर्मध्यान व शुक्लध्यान

में लीन रहते हैं, समस्त कषायों के त्यागी होते हैं, मौनव्रत को धारण करने वाले होते हैं और पर्वतों की गुफा-कंदराओं में रहते हैं, बाह्य-अभ्यंतर समस्त परिग्रहों के त्यागी होते हैं, स्नेह रहित परम वीतराग होते हैं और समस्त इच्छाओं से सर्वथा रहित होते हैं, ऐसे ये यतीश्वर महामुनि भगवान् जिनेंद्र के समान सदाकाल विहार करते रहते हैं, इसलिए ये जिनकल्पी मुनि कहलाते हैं[१]।

इन जिनकल्पी महामुनियों के कतिपय उदाहरण देखिए—

"जंबूद्वीप के पूर्वविदेह में रत्नसंचय नगर में वज्रायुध नाम के चक्रवर्ती हुए हैं। उन्होंने क्षेमंकर तीर्थंकर के पास दीक्षा लेकर सिद्धिगिरि नामक पर्वत पर जाकर एक वर्ष के लिए प्रतिमायोग धारण कर लिया। उनके चरणों का आश्रय पाकर बहुत सी सर्पों की वामियाँ तैयार हो गईं और उनके शरीर को चारों तरफ से लताओं ने वेष्ठित कर लिया था। एक वर्ष का योग समाप्त होने के बाद ये मुनिराज अन्यत्र चिरकाल तक विहार करते हुये घोराघोर तपश्चरण करते रहे। अंत में समाधिपूर्वक मरण करके ऊर्ध्व ग्रैवेयक में अहमिंद्र हो गये। ये ही महापुरूष इस वज्रायुध चक्रवर्ती के भव से पाँचवें भव में भगवान शांतिनाथ तीर्थंकर हुए हैं, जोकि पुनरपि यहाँ भरतक्षेत्र के पाँचवें चक्रवर्ती हुए हैं।"

भगवान बाहुबली स्वामी

"इस भरतक्षेत्र में भगवान ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र भगवान बाहुबली ने भी एक वर्ष का योग धारण किया था।' वे भावलिंगी मुनि थे। उन्हें अनेक ऋद्धियाँ प्रगट हो गयी थीं और मनःपर्ययज्ञान भी प्रकट हो गया था। यह मनःपर्ययज्ञान द्रव्यलिंगी मुनि के असंभव है। उनके मन में मिथ्याशल्य न होकर यह विकल्प अवश्य हो जाया करता था कि 'भरत चक्रवर्ती को मुझसे क्लेश हो गया है।' यही कारण था कि भरत सम्राट् के द्वारा पूजा होते ही उनका विकल्प दूर हो गया और वे क्षपकश्रेणी पर आरोहण करके केवली हो गये। भगवज्जिनसेनाचार्य ने इस बात को आदिपुराण में स्पष्टरूप से कहा है। यथा—

'मतिज्ञान की प्रकर्षता से उन्हें बुद्धि आदि ऋद्धियाँ प्रकट हो गयी थीं, श्रुतज्ञान की

१. सो जिणकप्पो उत्तो उत्तमसंहणणधारिस्स।।११९।।
जल वरिसणवायाई गमणे भग्गे य जम्म छम्मासं।
अच्छंति णिराहारा काओसग्गेण छम्मासं।।१२१।।
जिण इव विहरंति सदा ते जिणकप्पे ठिया सवणा।।१२३।। (भावसंग्रह पृ. ९३)
दधाना सततं मौनं आद्यसंहननाश्रिताः। कंदर्या कानने शैले बसंति तटनीतटे।।१०७।।
षण्णसमवतिष्ठंते प्रवृट्कालेगिसंकुले। जाते मार्गे निराहाराः कायोत्सर्गं समाश्रिताः।।१०८।।
(भद्रबाहुचरित परिच्छेद ४)

प्रकर्षता से समस्त अंगों और पूर्वों के जानने आदि की शक्ति का विस्तार हो गया था, अवधिज्ञान में वे परमावधि को उल्लंघन कर सर्वावधि को प्राप्त हुए थे और मनः पर्ययज्ञान में विपुलमति मनःपर्यय के स्वामी हो गये थे।

वह भरतेश्वर मुझसे संक्लेश को प्राप्त हो गया है' यह विचार बाहुबली के हृदय में विद्यमान रहता था, इसलिए केवलज्ञान ने भरत द्वारा पूजा की अपेक्षा की थी अर्थात् भरत के द्वारा पूजा होते ही उनका उपर्युक्त विकल्प दूर हो गया और उन्हें केवलज्ञान प्रगट हो गया था।" ये बाहुबली भगवान भी जिनकल्पी सदृश ध्यान में तत्पर रहे थे।[१]

महामुनि सिद्धार्थ और सुकौशल

अयोध्या नगरी के प्रसिद्ध सेठ सिद्धार्थ अपनी बत्तीस स्त्रियों में से सेठानी जयावती पर अधिक प्रेम करते थे किन्तु इन स्त्रियों में से किसी के संतान नहीं थी। जयावती संतान के लिए हमेशा कुदेवों की उपासना किया करती थी। एक दिन कुदेवों की पूजा करते हुये दिगम्बर मुनिराज ने उसे देखा और सम्यक्त्व का उपदेश दिया। मुनिराज कहने लगे—हे भद्रे! धन, पुत्र आदि लौकिक सुख भी धर्म के प्रसाद से ही मिलते हैं अतः तू जिनधर्म पर विश्वास करते हुए सदैव पुण्य का अर्जन कर, तेरी इच्छा अवश्य पूरी होगी तथा अंत में चलते समय मुनिराज ने कहा कि तुझे सात के भीतर ही पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी।

मुनिराज के सदुपदेशमयी अमृत को पीकर सेठानी ने अतीव आनंद का अनुभव किया। कालांतर में उसने पुत्ररत्न को जन्म दिया किंतु सेठ सिद्धार्थ पुत्र के मुख का अवलोकन कर उसे तत्क्षण ही अपने पद पर स्थापित करके आप विरक्त हो नयंधर मुनिराज से दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगे। जयावती को पति के वियोग का असह्य दुःख हुआ इससे वह आर्तध्यान से पीड़ित रहने लगी। उसे मुनिराज सिद्धार्थ पर ही नहीं किन्तु सभी मुनियों पर कषाय हो गयी। उसने अपने घर में मुनियों का आना-जाना बंद कर दिया। वयप्राप्त होने पर सुकौशल की भी बत्तीस कन्याओं से शादी हो गयी। सुकौशल भी महान् पुण्य से प्राप्त असीम सम्पत्ति और सुख का भोग करते हुए समय व्यतीत कर रहे थे।

किसी समय सुकौशल, माता जयावती, अपनी स्त्री और धाय के साथ महल की छत पर बैठे हुए अयोध्या की शोभा देख रहे थे। उन्होंने सामने से आते हुए एक मुनिराज

१. मतिज्ञानसमुत्कर्षात् कोष्ठबुद्धयादमयोऽभवन्। श्रुतज्ञानेन विश्वांगपूर्ववित्त्वादिविस्तरः।।१४६।।
परमावधिमुल्लंघ्य स सर्वावधिमासदत्। मनः पर्ययवोधे च संप्रापद् विपुलां मतिम्।।१४७।।
संक्लिष्टो भरताधीशः सोऽस्मत्त इति तत्किल। हृद्यस्य हार्दं तेनासीत तत्पूजापेक्षि केवलम्।।
(आदि पु. पृ. ३६)

को देखा। ये मुनि इनके पिता सिद्धार्थ ही थे। अकस्मात् जीवन में पहली बार दिगम्बर मुनि को देखकर सुकौशल आश्चर्यचकित होकर माँ से पूछते हैं कि मातः! ये कौन हैं? सिद्धार्थ को देखते ही जयावती के क्रोध भड़क उठा अतः उसने उपेक्षा और ग्लानि से कहा कि होगा कोई भिखारी, तुझे इससे क्या मतलब? अपनी माँ के इस उत्तर से सुकौशल को संतोष नहीं हुआ। पुनः प्रश्न किया—मातः! ये तो कोई महापुरूष अतितेजस्वी मालूम पड़ रहे हैं तुम इन्हें भिखारी कैसे कह रही हो? उस समय जयावती के दुर्भाव को देखकर सुनंदा धाय से न रहा गया, उसने वास्तविक परिचय देना चाहा किन्तु जयावती के संकेत से वह पूरा नहीं बोल सकी। तब सुकौशल ने भोजन के समय भोजन न करने का हठ धर लिया और वास्तविक परिचय जानना चाहा अनंतर सुनंदा धाय ने सारी बातें बता दीं।

सुकौशल उसी समय विरक्त होकर अपनी सुभद्रा पत्नी के गर्भस्थ बालक को ही अपना श्रेष्ठीपद संभलाकर पिता के पास पहुँचे और उनसे जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। अपने प्रियपुत्र के भी दीक्षित हो जाने से जयावती अतीव दुःख से पागल जैसी हो गयी। इस चिंता और आर्तध्यान से मरण कर वह व्याघ्री हो गई।

"एक समय सिद्धार्थ और सुकौशल मुनिराज (पिता और पुत्र) मौद्गिल पर्वत पर वर्षायोग ग्रहण करके स्थित हो गये। अनंतर योग पूर्ण करके चार मास उपवास के बाद वे दोनों महामुनि आहार के लिए पर्वत से नीचे उतरे। उस समय व्याघ्री ने (जयावती के जीव ने) पूर्व जन्म के क्रोध के संस्कारवश उन्हें शत्रु समझकर उनका भक्षण करना शुरू कर दिया। वे दोनों मुनि समाधिमरण से शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र हो गये। आगे मनुष्यलोक में आकर उसी भव से निर्वाण को प्राप्त करेंगे[१]।"

इस प्रकार जिनकल्पी मुनियों के चातुर्मास आदि के अनेक उदाहरण आगम में भरे हुए हैं।

स्थविरकल्पी मुनि के चातुर्मास

जिनेंद्रदेव ने स्थविरकल्पी का स्वरूप इस प्रकार बताया है कि जो मुनि पाँचों प्रकार के वस्त्रों का अर्थात् सूत, रेशम, ऊन, चर्म और वृक्ष की छाल से बने वस्त्रों का

१. मौद्गिले पर्वते योगं गृहीत्वा भुवनोत्तमौ।।३३।।
चतुर्मासोपवासांते पूर्णयोगे जगद्धितौ। चर्यार्थं निर्गतौ तौ च दृष्ट्वा व्याघ्री दुराशया।।३४।।
संन्यासेन स्थितौ यावत् तथा तावत्क्रमेण च भक्षितौ मरणं प्राप्य तदा सार समाधिना।।३५।।
जातौ सर्वार्थसिद्धौ तो सिद्धार्थाख्यसुकौशलौ। (आराधना कथा कोश पृ. २७२)

सर्वथा त्याग कर देते हैं, अकिंचन व्रत धारण करते हैं और मयूर पंख की पिच्छिकारूप प्रतिलेखन ग्रहण करते हैं, पाँच महाव्रतों को धारण करते हैं, बिना याचना किये, श्रावक द्वारा भक्तिभाव से दिये गये आहार को खड़े होकर करपात्र में ग्रहण करते हैं, बाह्य और अभ्यंतर तप को करने में उद्यमी रहते हैं, हमेशा छह आवश्यक क्रियाओं में तत्पर रहते हैं, क्षितिशयन और केशलोंच मूलगुणों का पालन करते हुए जिनेंद्र देव के समान ही माने जाते हैं, वे स्थविरकल्पी कहलाते हैं।

"इस[१] दुःषमकाल में शरीर के संहनन उत्तम—बलवान नहीं होते हैं इसलिए वे मुनि किसी नगर, गाँव या किसी पुर में रहते हैं और अपने तपश्चरण आदि के प्रभाव से स्थविरकल्प में स्थित होने से स्थविरकल्पी कहलाते हैं" वे मुनि अपने उपकरण ऐसे रखते हैं कि जिससे उनके चारित्र का किसी प्रकार से भंग न हो। वे अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार किसी के द्वारा दिए गए शास्त्र को ग्रहण करते हैं। इस पंचमकाल में ये मुनि संघ में रहकर समुदायरूप से विहार करते हैं, अपनी शक्ति के अनुसार धर्म प्रभावना करते हुये भव्यजीवों को धर्म का उपदेश देते हैं तथा शिष्यों का संग्रह करते हैं और उनका पालन करते हैं। यह काल दुःषम है, इस काल में शरीर के संहनन अत्यन्त हीन होते हैं, मन अत्यन्त चंचल रहता है, तथापि धीर-वीर पुरुष महाव्रतों का भार धारण करने में अत्यन्त उत्साहित रहते हैं यह भी एक आश्चर्य की बात है। पहले समय में जितने कर्मों को मुनि लोग अपने शरीर से हजार वर्ष में नष्ट करते थे, उतने ही कर्मों को आजकल स्थविरकल्पी मुनि अपने हीन संहनन वाले शरीर से एक वर्ष में ही क्षय कर डालते हैं।"

इसी प्रकार से अन्यत्र भी स्थविरकल्पी मुनि के विषय में कहा गया है कि ये मुनि स्थविर—वृद्ध साधुओं के रक्षण तथा पोषण में सावधान रहते हैं, इसीलिए महर्षि लोग इन्हें स्थविरकल्पी कहते हैं। इस भीषण दुःषमकाल में हीन संहनन के होने से ये मुनि स्थानीय नगर, ग्राम आदि के जिनालय में रहते हैं। यद्यपि यह काल दुःसह है, शरीर का संहनन हीन है, मन अत्यन्त चंचल है और मिथ्यामत सारे संसार में व्याप्त हो रहा है, तो भी ऐसे समय में भी ये मुनि संयम के पालन करने में तत्पर रहते हैं, यही एक विशेषता है।"

१. विहरंति गणैः साकं नित्यं धर्मप्रभावनां। कुर्वंति च शिच्याणां ग्रहणं पोषणं तथा।।११७।।
स्थविरादिव्रतित्रातत्राण पोषण चेतसः। ततः स्थविर कल्पस्याः प्रोच्यंते सूरिसत्तमैः।।११८।।
सांपातं कलिकालेऽस्मिन् हीनसंहननत्वतः। स्थानीय नगर ग्राम जिनसद्म निवासिनः।।११९।।
कालोऽयं दुःसहो हीनं शरीरं तरलं मनः। मिथ्यामतमतिव्याप्तं तथापि संयमोद्यताः।।१२०।।
(भद्रबाहु चरि परि. ४)

वर्तमान काल के मुनि

उपर्युक्त स्थविरकल्पी के लक्षण के अनुसार आजकल के मुनि हीन संहनन वाले होने से स्थविरकल्पी ही होते हैं, अतः जिनागम की आज्ञा के अनुसार ये ग्राम, नगर आदि के मंदिरों में या वसतिकाओं में वर्षायोग की स्थापना करते हैं और रहते हैं। कोई-कोई मुनि अपने को जिनकल्पी समझकर संघ में रहने वाले साधुओं की या संघ की व्यवस्था संभालने वाले आचार्य की अवहेलना और निंदा भी करते हैं तथा कोई-कोई श्रावक भी संघ के आचार्य की निंदा किया करते हैं जो कि आगम की ही अवहेलना करते हैं, ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

तीर्थंकर भगवान वर्षायोग नहीं करते हैं

तीर्थंकर भगवान साक्षात् जिन कहलाते हैं जिनके बारे में कहा है कि[१]" जिण इव विहरंति सदा ते जिणकप्पे ठिया सवणा।" अर्थात् जो जिन के समान सदा विहार करते हैं वे जिनकल्प में स्थित श्रमण जिनकल्पी हैं। इस कथन के अनुसार ये तीर्थंकर भगवान ही जिन" कहलाते हैं। उनके समान सदा विहार करने वाले मुनि जिनकल्पी कहलाते हैं। इस कथन से यह स्पष्ट है कि तीर्थंकर महामुनि की चर्या जिनकल्पी मुनियों के लिए उदाहरणस्वरूप है अतः पर्वतों की कंदरा, गुफा, श्मशान आदि में निवास करने वाले तीर्थंकर भगवान किसी शहर, ग्राम, मंदिर या वसतिका आदि में वर्षायोग स्थापित करते हैं यह बात असंभव है। दिगम्बर संप्रदाय के प्रथमानुयोग ग्रंथों में भी तीर्थंकरों के वर्षायोग अर्थात् चातुर्मास करने का विधान, प्रमाण या उदाहरण उपलब्ध नहीं होता है।

वास्तव में तीर्थंकर भगवान को दीक्षा लेते ही अंतर्मुहूर्त में मनःपर्ययज्ञान प्रकट हो जाता है तथा वे छद्मस्थ अवस्था में केवलज्ञान होने तक मौन ही रहते हैं और अकेले ही विचरण करते हैं, न उनके पास शिष्यपरिकर रहता है, न संघव्यवस्था रहती है वे निर्द्वंद्व रहते हुये विचरण करते हैं और निर्जन स्थान आदि में ध्यान करते हैं।

जिनकल्पी मुनियों में जिन शब्द में कल्प प्रत्यय हुआ है वह उनके किंचित् न्यून अर्थ को सूचित करता है। तथा-"ईषदसमाप्तौ कल्पदेश्यदेशीया[२]।।५५६।।"

ईषत्—किंचित् अपरिसमाप्ति के अर्थ में कल्प, देश्य और देशीय प्रत्यय होते हैं जैसे ईषत् अपरिसमाप्तः पटुः-पटुकल्पः। अर्थात् किंचित परिपूर्णता में किंचित कमी रहते हुए के अर्थ में कल्प प्रत्यय होता है अतः जो जिनकल्पी की चर्या कही गई, उनके लिए उदाहरणस्वरूप और उनकी अपेक्षा भी जो विशेष हैं, परिपूर्ण हैं वे ही 'जिन' होते

१. भावसंग्रह पृ. ९३। २. कातंत्ररूपमाला।

हैं, वे ही तीर्थंकर हैं अतः इनके वर्षायोग का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है, न ही आगम में प्रमाण ही मिलता है।

श्वेताम्बर ग्रंथों में भगवान महावीर के ४२ चतुर्मास माने हैं। १२ मुनि अवस्था में एवं ३० केवली भगवान की अवस्था में। ये दिगम्बर जैन ग्रंथों से संभव नहीं है।

महल के उद्यान में मुनि का चातुर्मास

प्रश्न—क्या चतुर्थकाल में मुनि ग्राम, उद्यान, मंदिर या वसतिकाओं में रहते थे?

उत्तर—हाँ! ग्राम, उद्यान आदि में रहते भी थे, वर्षायोग भी करते थे और वे साधारण मुनि न होकर महामुनि थे। आगम के उदाहरण देखिए।

"एक[१] समय गुणधराचार्य (जो कि सुकुमाल के मामा थे) सुकुमाल की आयु थोड़ी समझकर उज्जयिनी नगरी में आकर सुकुमाल कुमार के महल के निकट उन्हीं के उद्यान में ठहर गये और वहीं वर्षायोग स्थापन कर लिया। यह जानकर सुकुमाल की माता यशोभद्रा ने आकर मुनिराज से प्रार्थना की कि हे मुनिवर! आप चातुर्मास में उच्च स्वर से स्वाध्याय आदि का पाठ नहीं करें। तदनुसार मुनिराज ने वैसा ही किया। अनंतर वर्षायोग की समाप्ति पर मुनिराज ने रात्रि में वर्षायोग निष्ठापन क्रिया करके उच्च स्वर से ऊर्ध्वलोक प्रज्ञप्ति का पाठ करना शुरू कर दिया जिसको सुनकर सुकुमाल को जातिस्मरण हो गया और उन्होंने वहाँ आकर गुरू को नमस्कार करके उपदेश श्रवण कर तथा अपनी आयु तीन दिन की जानकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली।[१]"

इस प्रकार से महामुनि गुणधर आचार्य ने महल के उद्यान में वर्षायोग व्यतीत किया था और वे अपने भानजे सुकुमाल के आत्महित में निमित्त बने थे। जब तक मुनियों की सराग चर्या रहती है, आहार-विहार आदि प्रवृत्ति करते हैं तब तक परोपकर को भी अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं।

शहर के निकट और मंदिर में मुनि का वर्षायोग

किसी समय सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयलालस, और जयमित्र नाम के सप्त ऋषि महामुनि अयोध्या नगरी में विधिपूर्वक भ्रमण करते हुये अर्हदत्त सेठ के घर पहुँचे। उन मुनियों को देखकर सेठ ने मन में सोचा कि इन

१. अथैकदा जगत्पूज्यः सुकुमालस्य मातुलः। नाम्ना गणधराचार्यो जैनतत्वविदांवरः।।१२४।।
ज्ञात्वा श्री सुकुमालस्य स्वल्पायुर्मुनिसत्तमः।
तदीयोद्यानमागत्य सुधीर्योगं गृहीतवान्।।१२५।।(आराधनाकथा कोशः)

२. पद्मपुराण पर्व ९२, पु. १८१।

मुनियों ने इस अयोध्या नगरी में वर्षायोग स्थापना नहीं की है पुनः ये मुनि वर्षा ऋतु में यहाँ कैसे आ गये? ये अनर्गल प्रवृत्ति करने वाले दिखते हैं। इस नगरी के आसपास पर्वत की कन्दराओं में, नदी के तट पर, वृक्ष के मूल में, सूने घर में, जिनालय में तथा अन्य स्थानों पर जो भी मुनिराज स्थित हैं वे वर्षायोग पूरा किये बिना इधर-उधर भ्रमण नहीं करते हैं इत्यादि रूप से विचार करके सेठ ने उन्हें आहार नहीं दिया किन्तु उनकी पुत्रवधू ने उन मुनियों को आहारदान देकर अक्षय पुण्य संपादन कर लिया।

आहार के बाद वे निर्दोष प्रवृत्ति वाले मुनि अनेक मुनियों से व्याप्त श्री मुनिसुव्रत भगवान के मंदिर में दर्शनार्थ पहुँचे। ये पृथिवी से चार अंगुल ऊपर चल रहे थे। ऐसे इन ऋद्धिधारी मुनियों को मंदिर में विद्यमान द्युति भट्टारक अर्थात् द्युति नामक आचार्य ने देखा और खड़े होकर इनकी वंदना करके रत्नत्रय कुशल आदि पूछकर विनय भक्ति की। द्युति आचार्य के शिष्यों ने उन सप्तऋषियों की निंदा करते हुये मन में विचार किया कि अहो! ये हमारे आचार्य चाहे किसी की वंदना करने लग जाते हैं। पुनः वे सातों ऋषि जिनेंद्रदेव की स्तुति करके आकाशमार्ग से अपने स्थान को विहार कर गये। उन्हें आकाशमार्ग से जाता देख अन्य मुनियों ने उन्हें चारण ऋद्धिधारी समझकर उनके प्रति किये गये दुर्भावों की निंदा करते हुये अपने अपराध की शुद्धि की।

इसी बीच मंदिर में अर्हदत्त सेठ आ गये। द्युति भट्टारक ने उनसे पूछा कि आज आपने उत्तम महामुनि के दर्शन किये होंगे? वे मथुरा के निवासी, आकाश ऋद्धिधारी महातपस्वी थे। आचार्य के मुख से उन मुनियों की महिमा को सुनकर सेठ का हृदय पश्चात्ताप से संतप्त हो गया। वह विचार करने लगा कि यथार्थ को नहीं समझने वाले मुझ मिथ्यादृष्टी को धिक्कार हो। मेरे समान अनिष्ट, अनुचित आचरण युक्त अधार्मिक कौन होगा? मुझ से बढ़कर अन्य मिथ्यादृष्टी और कौन होगा? हाय! मैंने उठकर उन मुनियों की पूजा नहीं की तथा नमस्कार कर उन्हें आहार से संतुष्ट नहीं किया। जो मुनि को देखकर आसन नहीं छोड़ता है वरन् देखकर उनका अपमान करता है वह मिथ्यादृष्टी कहलाता है[१]। इत्यादि रूप से अपनी निन्दा करते हुए वह सोचता है कि जब तक मैं हाथ जोड़कर उन मुनियों की वंदना नहीं कर लेता तब तक मेरे मन की दाह शांत नहीं होगी। अहंकार से उत्पन्न हुये इस पाप का प्रायश्चित्त उन मुनियों की वंदना के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता।

अनंतर कार्तिक सुदी पूर्णिमा को निकट जानकर उस महासम्यग्दृष्टी, वैभवशाली

१. साधुरूपं समालोक्य न मुंचत्यासनं तु यः। दृष्ट्वापमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते।।
(पद्म पु. पर्व ९२)

सेठ ने सप्तर्षियों की पूजा के लिए अपने बंधुओं के साथ मथुरा नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया। कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन वहाँ पहुँचकर मुनियों की वंदना करके पूजन हेतु महान उत्सव किया। इन सप्तर्षि मुनियों ने मथुरा नगरी के समीप वटवृक्ष के नीचे वर्षायोग धारण किया था। फिर भी ये ऋद्धि के प्रभाव से आकाशमार्ग से बहुत दूर पोदनपुर, विजयपुर, अयोध्या आदि स्थानों में जाकर पाणिपात्र में शुद्ध भिक्षा ग्रहण किया करते थे। इनके प्रभाव से मथुरा नगरी की महामारी शांत हो गई थी। उस समय वहाँ का राजा शत्रुघ्न था जो कि रामचन्द्र जी का लघु भ्राता था। आगे इन्हीं "सप्तर्षियों ने राजा शत्रुघ्न को जिन मंदिर बनवाने का एवं स्थल-स्थल पर सप्तर्षि प्रतिमा बनवाकर विराजमान करने का उपदेश दिया है तथा घर-घर में चैत्यालय बनवाने का भी उपदेश दिया है।"

(१) इस कथानक से हमें यह देखना है कि ऋद्धिधारी महामुनियों ने नगरी के समीप उद्यान में वर्षायोग किया था तथा श्रावकों को मूर्ति, मंदिर, मुनि प्रतिमा, घर में चैत्यालय आदि बनवाने का उपदेश दिया था।

(२) दूसरी बात यह देखनी है कि महान आचार्य द्युतिगुरूदेव अपने संघ सहित अयोध्या में मुनिसुव्रत भगवान के मंदिर में वर्षायोग धारण कर चातुर्मास कर रहे थे।

(३) तीसरी बात यह है कि चारण ऋद्धिधारी मुनि वर्षाकाल में भी आहार आदि निमित्त अन्यत्र विहार कर सकते हैं। कारण यही है कि उनके द्वारा आकाशमार्ग से गमन करने में पृथ्वीतल के जीवों को बाधा नहीं पहुँचती है।

अभिप्राय यह है कि जब ऐसे ऋद्धिधारी सप्तर्षि, जिनके प्रभाव से महामारी रोग समाप्त हो गया है, उन्होंने भी जब मथुरा नगरी के निकट उद्यान में चातुर्मास किया था, और द्युति आचार्य ससंघ अयोध्या के जिनमंदिर में चातुर्मास कर रहे थे, जबकि श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकर का तीर्थकाल था और मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र इस पृथ्वी का पालन कर रहे थे, पुनः यदि आज के हीनसंहनन वाले मुनि ग्राम के मंदिर आदि में चातुर्मास करते हैं तो क्या बाधा है?

क्या परिहारविशुद्धि वाले मुनि वर्षायोग में अन्यत्र गमन करते हैं?

परिहारविशुद्धि संयम धारण करने वाले महामुनि भी तीनों कालों की संध्याओं को छोड़कर दो गव्यूति प्रमाण विहार करते रहते हैं। यथा-"पाँच प्रकार के संयम में से अभेदरूप से अथवा भेदरूप से एक संयम से युक्त सर्वसावद्य का सर्वथा परित्याग करने वाले साधु पाँच समिति और तीन गुप्ति से सहित होते हुये परिहारविशुद्धि संयम को प्राप्त

होते हैं। जन्म से लेकर तीस वर्ष तक सदा सुखी रहकर पुनः दीक्षा लेकर श्री तीर्थंकर भगवान के पादमूल में आठ वर्ष तक प्रत्याख्यान नामक नवमें पूर्व का अध्ययन करने वाले के यह संयम होता है। इस परिहारविशुद्धि संयम वाले मुनि तीन संध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोसपर्यंत गमन करते हैं। रात्रि को गमन नहीं करते हैं।

इनके वर्षाकाल में गमन करने या न करने का कोई नियम नहीं है। चूंकि जीव राशि में विहार करते हुये भी इन मुनियों से जीवों को बाधा नहीं होती है, अतएव इन साधुओं के लिए वर्षायोग का कोई नियम नहीं है।

गृहस्थ के घर में मुनि का चातुर्मास

शंका-"क्या मुनि गृहस्थों के घर में निवास कर सकते हैं?

समाधान-हाँ, कारणवश ऐसे उदाहरण आगम में उपलब्ध है।" देखिए-

किसी समय [१]मणिमाली नाम के एक मुनिराज उज्जयिनी नगरी के श्मशान भूमि में मुर्दे के समान आसन लगाकर ध्यान कर रहे थे। रात्रि में एक मंत्रवादी ने आकर उनके शरीर को मृतक समझकर उनके मस्तक पर एक चूल्हा रखकर मृतक के कपाल में दूध और चावल डालकर खीर पकाने लगा। अग्नि की ज्वाला से मुनि के मस्तक और मुख में तीव्र वेदना होने से मुनिराज का मस्तक हिलने लगा, इस निमित्त से वह हांडी अकस्मात् गिर गई। यह देख वह मंत्रवादी डरकर भाग गया। प्रातः जब सेठ जिनदत्त ने यह घटना सुनी, वे तत्क्षण ही वहाँ आकर मुनिराज को अपने स्थान पर ले गये। भक्ति पूर्वक उनका उपचार किया कुछ दिन बाद वे मुनि स्वस्थ हो गये और तभी वर्षाकाल का समय भी आ गया। सेठ जिनदत्त आदि के आग्रह से मुनिराज ने वहीं पर चातुर्मास धारण कर लिया।

सेठ का पुत्र दुर्व्यसनी था। एक दिन सेठ जिनदत्त ने पुत्र के भय से अपने धन को एक घड़े में भरकर उस घड़े को लाकर मुनिराज के सिंहासन के नीचे एक गहरा गड्ढा खोदकर उसमें गाड़ दिया, किन्तु उसके पुत्र ने यह सब कार्य छुप कर देख लिया था अतः उसने एक दिन चुपके से वह धन निकाल लिया।

चातुर्मास समाप्ति के अनंतर, मुनिराज विहार कर गये। तब सेठ ने अपना धन का घड़ा निकालना चाहा, किन्तु वहाँ न मिलने पर वह मुनिराज पर ही संदेह करने लगा। पुनः मणिमाली मुनिराज के पास जाकर उनसे कहने लगा — भगवन्! आपके विहार करके चले आने से उज्जयिनी की जनता बार-बार आपका स्मरण कर रही है आप कृपा कर एक बार पुनः दर्शन दीजिये। सेठ जी के अतीव आग्रहवश मुनिराज पुनः विहार करके वहीं पर आ गये। अब सेठ ने मुनिराज से कुछ कथा कहने को कहा। मुनिराज ने

१. आराधना कथाकोश-अभयदान की कथा।

भी सेठ की चेष्टाओं से उसके मन के संदिग्ध अभिप्राय को जान लिया और तदनुसार कथा के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि बिना विचारे लोग सदोष को भी निर्दोष समझ लेते हैं। तब सेठ ने भी कथा सुनाई जिसका आशय यह था कि कुछ लोग उपकारी के उपकार का बदला अपकार से चुकाते हैं। ऐसे ही बहुत समय तक मुनि और सेठ के मध्य कथाओं का तांता चलता रहा तब सेठ के पुत्र ने सारी घटना देखकर धन और जन से अतिशय विरक्त होकर वह धन का घड़ा दोनों के बीच में लाकर रख दिया और बोला कि इस निकृष्ट धन को धिक्कार हो कि जिसके लोभ में मेरे पूज्य पिताजी परम धार्मिक मुनिभक्त होकर भी महामुनि पर ही संदेह कर रहे हैं। हे गुरुदेव! अब मुझे इस धन की आवश्यकता नहीं है, मैं संसार के दुःखों से अतिशय रूप से भयभीत हो चुका हूँ। अब आप मुझे संसार समुद्र से पार करने वाली जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिये।

अपने पुत्र का ही अपराध और पुनः ऐसा विरक्त परिणामरूप साहस देखकर सेठ जी एकदम पश्चात्ताप से आहत हो गये। वे अपनी निंदा करने लगे कि हाय! हाय! मैंने यह क्या कर डाला? पुनः उन्होंने भी उस धन को जीर्णतृणवत् छोड़कर उन्हीं गुरुदेव के पादमूल में जैनेश्वरी दीक्षा ले ली अर्थात् वे सेठ जिनदत्त अपने पुत्र के साथ दीक्षित हो गये।

कहने का मतलब यही है कि चतुर्थकाल में जब मुनि शिरोमणि दो गुप्तियों से विभूषित परम तपस्वी साधु श्रावकों के घर में चातुर्मास कर लेते थे। यह घटना उस समय की है जबकि राजा श्रेणिक और रानी चेलना में धर्म का संघर्ष चल रहा था और राजा दिगम्बर मुनियों की परीक्षा करना चाहता था। पुनः आज कोई मुनि कारणवश श्रावक के स्थानों में ठहर जाते हैं और चातुर्मास भी कर लेते हैं तो क्या दोषास्पद ही है? अर्थात् दोषास्पद नहीं भी है तथा राजमार्ग भी नहीं है। हाँ! उन्हें अपने संयम में बाधा नहीं लाना चाहिए।

धर्मशाला में भी मुनियों के ठहरने का उदाहरण

[१]मालव देश के अंतर्गत एक घटगांव में एक देविल नाम का धनी कुंभकार और एक धर्मिल नाम का नाई रहता था। ये दोनों आपस में परम मित्र थे। एक बार इन दोनोंने मिलकर यात्रियों के ठहरने के लिए एक धर्मशाला बनवाई। एक दिन देविल ने एक मुनिको उस धर्मशाला में ठहरा दिया। धर्मिल को मालूम होते ही उसने आकर मुनि को वहाँ से निकाल दिया और संन्यासी को लाकर वहाँ ठहरा दिया। मुनिराज ने धर्मशाला से निकलकर एक वृक्ष के नीचे ठहर कर रात्रि वहीं व्यतीत की और शांतभाव से डांस-मच्छर वगैरह का परिषह सहन किया। देविल ने प्रातः आकर धर्मशाला में मुनि को न पाकर जब बाहर एक वृक्ष के नीचे देखातब उसे धर्मिल

१. पद्मपुराण पर्व १२३, पुस्तक ३, पृ. ४१७।

मित्र पर अत्यंत क्रोध हो आया। यहाँ तक कि दोनों में आपस में खूब घमासान मारा-मारी हो गयी। दोनों ही मरकर क्रम से सूकर और व्याघ्र हो गये।

किसी समय दो मुनिराज वन के मध्य गुफा में विराजे थे। देविल के जीव सूकर ने उनके दर्शन करके जातिस्मरण को प्राप्त होकर मुनिराज के उपदेश को सुना और उनसे कुछ व्रत ग्रहण कर लिया। इधर धर्मिल के जीव व्याघ्र ने भी अकस्मात् वहाँ आकर मुनियों को भक्षण करना चाहा, किन्तु गुफा के द्वार पर ही सूकर ने उसके साथ युद्ध करना शुरू कर दिया। दोनों खून से लथपथ होकर अंत में मर गये। सूकर मुनिरक्षा के अभिप्राय से मरकर देवगति को प्राप्त हो गया और व्याघ्र नरक चला गया।

कहने का अभिप्राय इतना ही है कि उस समय मुनियों को धर्मशाला में भी ठहराया जाता था। जैसा कि देविल कुंभार ने ठहराया था। पुनः आज भी मुनियों को धर्मशाला, वसतिका आदि में ठहराया जाता है।

मुनियों को वसतिका में ठहरने के लिए विधान तो मूलाचार, मूलाराधना, अनागारधर्मामृत आदि ग्रंथों में स्पष्टतया किये गये है।

चातुर्मास में श्रावकों द्वारा आहारदान

प्रश्न-क्या श्रावक मुनियों के आहारदान हेतु अन्यत्र से आकर चातुर्मास में मुनियों को आहारदान दे सकते हैं?

उत्तर-अवश्य दे सकते हैं। यदि श्रावक आहारदान में भक्ति रखते हैं और उनके गाँव में उस समय मुनि आदि नहीं हैं अथवा किन्हीं संघ या आचार्य आदि के प्रति उन्हें विशेष अनुराग है, तो उनके निकट जाकर भी आहारदान देते हैं अथवा कदाचिद् किन्हीं मुनियों की आहारादि व्यवस्था के अभाव में भी उनके पास जाकर आहार-दान देकर पुण्य लाभ लेते हैं। पद्मपुराण में एक उदाहरण बहुत ही सुन्दर मिलता है। यथा-

"अयोध्या नगरी में राजा के समान वैभव को धारण करने वाला अनेक करोड़ सम्पत्ति का धनी वज्रांक नाम का एक सेठ रहता था। सीता के निर्वासन समाचार को सुनकर वह इस प्रकार चिंता को प्राप्त हुआ कि 'अत्यंत सुकुमारांगी तथा दिव्य गुणों से अलंकृत सीता वन में किस अवस्था को प्राप्त हुई होगी? इस चिंता से वह अत्यंत दुखी हुआ और परम वैराग्य को प्राप्त होकर अयोध्या में ही विराजमान द्युति नामक आचार्य के पास दैगंबरी दीक्षा ग्रहण कर ली। इसकी दीक्षा का हाल घर के लोगों को विदित नहीं हुआ था। सेठ वज्रांक के अशोक और तिलक नाम के दो विनयवान पुत्र थे सो वे किसी समय निमित्तज्ञानी द्युति मुनिराज के पास अपने पिता का हाल पूछने के लिए आये। वहीं पिता को देखकर स्नेह अथवा वैराग्य के कारण अशोक और तिलक ने भी उन्हीं द्युति आचार्य के

पादमूल में जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। द्युति मुनिराज परम तपश्चरण कर तथा आयु के अंत में शिष्यजनों को उत्कंठा प्रदान करते हुये ऊर्ध्व ग्रैवेयक में अहमिंद्र हो गये।

अनंतर पिता और दोनों पुत्र ये तीनों ही मुनि मिलकर गुरू के कहे अनुसार प्रवृत्ति करते हुये जिनेंद्र भगवान की वंदना के लिए ताम्रचूड़पुर की ओर चले। बीच में पचास योजन प्रमाण बालू का समुद्र (रेगिस्तान) मिलता था सो वे इच्छित स्थान तक नहीं पहुँच पाए। बीच में वर्षाकाल आ गया। उस रेगिस्तान में जिसका मिलना अत्यंत कठिन था तथा जो अनेक शाखाओं उपशाखाओं से युक्त था ऐसे एक वृक्ष को पाकर उसके आश्रययुक्त तीनों मुनिराज ठहर गये। जहाँ पर आहार का कोई ठिकाना नहीं था।

उसी काल में अयोध्यापुरी को जाते समय जनक के पुत्र भामंडल ने उन तीनोंमुनिराजों को वहाँ रेगिस्तान में देखा। तत्क्षण ही उस पुण्यात्मा के मन में विचार आया कि ये मुनि आचार की रक्षा के निमित्त इस निर्जन वन में ठहर गये हैं परन्तु प्राणधारण के लिए ये आहारकहाँ ग्रहण करेंगे? ऐसा विचार कर सद्विद्या की उत्तम शक्ति से युक्त भामंडल ने बिल्बुल पास में एक सुन्दर नगर बसाया अर्थात् विद्या के प्रभाव से एक सुन्दर नगर की रचना कर ली। वह सब प्रकार की सामग्री से सहित था, उसमें स्थान-स्थान पर अहीर आदि के रहने के ठिकाने दिखलाये। तदनंतर अपने स्वाभाविक रूप में स्थित होकर उसने विनयपूर्वक मुनियों को नमस्कार किया। वह अपने परिजनों के साथ वहीं रहने लगा तथा योग्य देश-काल में दृष्टिगोचर हुएसत्पुरुषों को भावपूर्वक न्याय के साथ हर्षसहित आहार कराने लगा।

इस निर्जन वन में जो मुनिराज थे उन्हें तथा पृथ्वी पर उत्कृष्ट संयम को धारण करने वाले जो अन्य विपत्ति से ग्रसित साधु थे, उन सबको वह आहार आदि देकर संतुष्ट करने लगा। मुनिजन तो पुण्यरूपी सागर में व्यापार करने वाले हैं और भामंडल उनके सेवक के समान हैं।

कतिपय दिनों के अनंतर किसी समय भामंडल उद्यान में अपनी मालिनी नामक भार्या के साथ शय्या पर शयन कर रहे थे कि अकस्मात् वज्रपात से उनकी मृत्यु हो गई। वे भामंडल मुनिदान के माहात्म्य से मेरू पर्वत के दक्षिण में विद्यमान देवकुरू नामक उत्तम भोगभूमि में अपनी पत्नी के साथ युगलिया हो गये। उनकी आयु तीन पल्य की थी और उनका शरीर दिव्य लक्षणों से युक्त था। जो मनुष्य उत्तम पात्रों को आहार आदि दान देते हैं वे उत्तम भोगभूमि के सुखों का अनुभव कर नियम से देव पर्याय को प्राप्त होते हैं। पश्चात् क्रम से मोक्ष सुख को भी प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार से भाक्तिक श्रावकगण कहीं भी जाकर मुनियों को आहारदान देकर अपने संसार की स्थिति को कम करते हुए परम्परा से निर्वाण लाभ करते ही हैं।

वर्षायोग निष्ठापना विधि

वर्षायोग समाप्ति के प्रारंभ में कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन मध्यान्ह में मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना करके, आहार करके आकर सभी साधु मंगलगोचर वृहत्प्रत्याख्यानविधि से बड़ी सिद्धभक्ति, योगभक्ति द्वारा वर्षायोगनिष्ठापन हेतु चतुर्दशी का उपवास ग्रहण करते हैं पुनः आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्यवंदना करके शांतिभक्ति का पाठ करते हैं।

अनंतर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में पूर्वोक्त विधि से भक्तियों का पाठ करते हुये वर्षायोग समापन कर देते हैं। उसमें अन्तर केवल इतना ही रहता है कि...."वर्षायोग प्रतिष्ठापनक्रियायां" पाठ के स्थान पर "वर्षायोग निष्ठापनक्रियायां" पाठ बोलते हैं।

वर्षायोग निष्ठापना के बाद सभी साधु मिलकर ही वीर निर्वाण क्रिया करते हैं, उसमें सिद्धभक्ति, निर्वाणभक्ति, पंचगुरूभक्ति और शांतिभक्ति का पाठ पढ़ते हैं अनंतर नित्य देववंदना अर्थात् सामायिक करते हैं।

नूतन पिच्छिका ग्रहण

वर्षायोग समाप्ति के अनंतर वर्तमान साधुओं को नूतन पिच्छिका ग्रहण करने की परम्परा है अर्थात् श्रावक अथवा साधु-साध्वियाँ कार्तिक मास में स्वयं पतित ऐसे मयूर पंखों की पिच्छिका का निर्माण करते हैं और उन्हें लाकर आचार्यश्री के सामने रख देते हैं। संघस्थ प्रमुख साधु अर्थात् आचार्य के प्रमुख शिष्य या अन्य कोई प्रमुख श्रावक सबसे पहले आचार्यश्री को पिच्छिका प्रदान करते हैं तब आचार्यदेव नूतन पिच्छिका ग्रहण कर पुरानी पिच्छिका का त्याग कर देते हैं। अनंतर आचार्य महाराज क्रमशः अपने शिष्यों को—मुनियों को, आर्यिकाओं को और क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं को नूतन पिच्छिका देते हैं। सभी साधु नूतन पिच्छिका ग्रहण कर पुरानी पिच्छिका को छोड़ देते हैं।

श्रावकगण आवश्यकतानुसार साधुओं को कमंडलु, शास्त्र आदि भी प्रदान करते हैं। आर्यिकाओं, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं को वस्त्र भी देते हैं।

वर्षायोग के प्रारंभ और अंत में श्रावकगण चतुर्विध संघ की भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं।

चातुर्मास में विविध पर्व

वर्षाकाल में पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ तथा विवाह आदि कार्य नहीं होते हैं तथा वृष्टि की बहुलता से श्रावकों के व्यापार भी मंद गति से चलते हैं। यही कारण है कि श्रावकजन भी साधुओं के चातुर्मास से अत्यधिक लाभ ले लिया करते हैं। इन चार

महीनों के अंतर्गत अनेक धार्मिक पर्व आ जाते हैं जिनके निमित्त से विशेष धार्मिक आयोजन, विधि विधान, उत्सव तथा धर्मोपदेश का लाभ मिलता है।

वर्षायोग प्रारम्भ होते ही सर्वप्रथम श्रावण बदी एकम को वीर शासन जयंती दिवस आ जाता है। छ्यासठ दिन बाद विपुलाचल पर्वत पर गौतम स्वामी के आते ही भगवान् महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि इसी दिन प्रगट हुई थी। वीर प्रभु का धर्मशासन इसी दिन से चला है इसलिए इस पर्व को मनाते हैं। पुनः श्रावण सुदी एकम से सप्तमी तक सात दिन सप्तपरमपद की प्राप्ति हेतु सप्तपरमस्थानव्रत किया जाता है। सज्जाति, सद्गार्हस्थ्य, पारिव्राज्य, सुरेंद्रता, साम्राज्य, आर्हन्त्य और परिनिर्वाण ये सात पद परमस्थान के नाम से कहे गये है। अनंतर श्रावण शुक्ला सप्तमी को ही इसी दिन बहुत सी महिलाएँ और कन्याएँ मुकुट सप्तमी व्रत करती है पुनः श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों की रक्षा की खुशी में रक्षाबंधन पर्व मनाया जाता है। इसी दिन श्री विष्णु कुमार मुनि और अकंपनाचार्यादि मुनियों की पूजा करके उनकी कथा सुनाई जाती है।

भाद्रपद तो व्रतों का भंडार ही है। भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा से ही तीर्थंकर प्रकृति बंध के लिए कारणस्वरूप ऐसी षोडशकारण भावनाओं की उपासना एक मास तक चलती है। बहुत से श्रावक, श्राविकागण सोलहकारण व्रत करते हैं। भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदा, दूज और तीज इन तीन दिन लब्धि विधान व्रत किया जाता है। तीन महिलाओं ने इस व्रत को करके कालांतर में इन्द्रभूति, वायुभूति और अग्निभूति होकर भगवान महावीर के गणधर के पद को प्राप्त किया है। भाद्रपद शुक्ला पंचमी के दिन आकाशपंचमी व्रत होता है। इसी दिन से उत्तम क्षमा आदि धर्मों की उपासना हेतु दश दिन दशलक्षण पर्व मनाया जाता है। इसी पंचमी से नवमी तक पाँच दिन पँचमेरू के चैत्यालयों की उपासना के हेतु पुष्पांजलि व्रत होता है। पुनः दशमी को सुगंध दशमी व्रत होता है। तेरस, चौदह और पूर्णिमा को रत्नत्रय व्रत किया जाता है। अनंतचतुर्दशी व्रत को तो प्रायः किसी न किसी रूप से सभी समाज मनाती हैं। अनंतर सोलहकारण व्रत के अंतिम दिन आसोज वदी प्रतिपदा को सर्वत्र मंदिरों में पूर्णाभिषेक होता है और इस दिन क्षमावणी पर्व बड़े पवित्र भावों से मनाया जाता है। इस भाद्रपद में और भी अनेक व्रत होते हैं जो कि व्रत विधान की पुस्तकों से जाने जाते हैं।

आश्विन सुदी पूर्णिमा के दिन भी धार्मिक कार्यक्रम होते हैं पुनः कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रभात में वीर प्रभु का निर्वाण दिवस बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न होता है उसी दिन शाम को गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, इसी की स्मृति में उसी दिन शाम को गौतम गणधर के केवलज्ञान लक्ष्मी की पूजा करके गणधर

देव की पूजा करते हैं तथा इस पूजा को नूतन वर्ष के प्रारंभ में मंगलकारी मानकर पूजा करके नवीन बही आदि में स्वस्तिक बनाते हैं। इस बात को न समझ कर कुछ अज्ञानी लोग बही की पूजा हेतु गणेश और लक्ष्मी की पूजा करने लगे हैं वास्तव में गौतम गणधर ही गणों के ईश होने से गणेश हैं और केवलज्ञान लक्ष्मी ही महालक्ष्मी है। इनकी पूजा ही संपूर्ण मंगल की देने वाली है। धन-धान्य-समृद्धि को करते हुए परम्परा से केवलज्ञान लक्ष्मी और मुक्ति लक्ष्मी को भी प्राप्त कराने वाली है।

कार्तिक शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमापर्यंत आठ दिन महानंदीश्वर पर्व मनाया जाता है। इस पर्व में श्रावक प्रायः सिद्धचक्र विधान आदि प्रारंभ कर देते है अतः साधु संघ को भी आग्रहपूर्वक रोक लेते हैं और रथयात्रा आदि उत्सवपूर्वक चातुर्मास सम्पन्न करते हैं।

इन चार महीनों में वर्तमान आचार्य परम्परा के मूलस्त्रोत चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज का आषाढ़ वदी छठ का जन्म दिवस और भाद्रपद शुक्ला द्वितीया का सल्लेखना दिवस आ जाता है। आचार्य श्री वीरसागर महाराज का आषाढ़ सुदी पूर्णिमा को जन्म दिवस और आश्विन वदी अमावस को सल्लेखना दिवस मनाया जाता है। इसी आश्विन की अमावस के दिन ही आचार्य पायसागर जी महाराज का भी सल्लेखना दिवस है। इसी प्रकार से और भी अनेक पर्व और व्रत इन दिनों में आते हैं, जिन्हें श्रावक उत्सव के साथ मनाते हैं।

चातुर्मास के पर्व और व्रत एक दृष्टि में-

१. आषाढ़ सुदी अष्टमी से पूर्णिमा तक	आष्टान्हिकपर्व
२. आषाढ़ सुदी चतुर्दशी की पूर्व रात्रि में	वर्षायोग स्थापना
३. आषाढ़ के अंतिम रविवार से भाद्रपद के अंतिम रविवार तक	रविवार व्रत
४. आषाढ़ सुदी पूर्णिमा	आचार्य वीर सागर जन्म दिवस
५. श्रावण कृष्णा प्रतिपदा	वीर शासन जयंती
६. श्रावण शुक्ला प्रतिपदा से सप्तमी तक	सप्त परमस्थानव्रत
७. श्रावण शुक्ला सप्तमी	पार्श्वप्रभु निर्वाण दिवस और मुकुट-सप्तमी व्रत
८. श्रावण शुक्ला पूर्णिमा	रक्षाबंधन पर्व
९. भाद्रपद एकम् से आश्विन वदी एकम् तक	सोलहकारण पर्व
१०. भाद्रपद सुदी एकम् से तीज तक	लब्धि विधान व्रत

११. भाद्रपद सुदी द्वितीया	आ. शांतिसागर का सल्लेखना दिवस
१२. भाद्रपद सुदी पंचमी से चौदस तक	दशलक्षण पर्व
१३. भाद्रपद सुदी पंचमी से नवमी तक	पंचमेरु व्रत
१४. भाद्रपद शुक्ला पंचमी	आकाशपंचमी व्रत
१५. भाद्रपद शुक्ला दशमी	सुगंधदशमी व्रत
१६. भाद्रपद शुक्ला ग्यारह से चौदह तक	अनंत चतुर्दशी व्रत
१७. भाद्रपद शुक्ला तेरस से पूर्णिमा तक	रत्नत्रय व्रत
१८. आश्विन कृष्णा प्रतिपदा	क्षमावाणी पर्व
१९. आश्विन कृष्णा अमावस्या	आचार्य श्री वीरसागर एवं श्री पायसागर महाराज का सल्लेखना दिवस
२०. आश्विन शुक्ला पूर्णिमा	शरद पूर्णिमा[१]
२१. कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में	वर्षायोग निष्ठापना
२२. कार्तिक कृष्णा अमावस्या के उषाकाल में	वीर निर्वाण पूजा
२३. कार्तिक कृष्णा अमावस्या के सायंकाल में	गौतम गणधर के केवलज्ञान की पूजा
२४. कार्तिक शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक	आष्टान्हिक पर्व

इस प्रकार से साधुओं के वर्षायोग में ग्राम, नगर या शहर का संपूर्ण वातावरण धर्ममय बन जाया करता है। कई एक भव्य जीव गुरुओं से धार्मिक शिक्षा, उपदेश ग्रहण करते हैं। कई एक जीव विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा ले लेते हैं। महिलाएँ भी मुनि या आर्यिकाओं से प्रेरणा पाकर आर्यिकाएँ बन जाती हैं। इस प्रकार चातुर्मास में दीक्षा के प्रसंग भी आ जाते हैं। अनेक नर-नारी बृहत्पल्यव्रत, जिनगुणसंपत्ति व्रत, णमोकार मंत्र आदि व्रतों को ग्रहण कर लेते हैं। विद्वान् साधुओं के उपदेश से जैन-अजैन समाज अधिकरूप से धर्मपीयूष का पान करके संसार ताप को शांत कर लेता है।

१. गणिनी ज्ञानमती माताजी का जन्मदिन।